Con. 3. VII.11.48
350

अंक 7
संख्या 11

मंगलवार
23 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. विधान का मसौदा–(*जारी*) 709
[अनुच्छेद 32, 33, 34, 34-ए, 35, 36, 37 तथा 38 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 23 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः 10 बजे उपाध्यक्ष महादेय (डा. एच.सी. मुखर्जी) के सभापतित्व में समवेत हुई।

विधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 32

***रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं आपकी अनुमति से संशोधन सं. 933 और 934 साथ ही उपस्थित करूंगा।

मैं प्रस्ताव करता हूं:

''(1) कि अनुच्छेद 32 में 'शिक्षा' इस शब्द के पश्चात् एक अर्ध विराम (कोमा) तथा 'to medical aid' (चिकित्सा सम्बन्धी सहायता) यह शब्द जोड़ दिये जायें।

(2) कि 'undeserved want (अनर्ह अभावावस्था)' इन शब्दों के स्थान पर 'deserving relief (उचित सहायता)' यह शब्द रख दिये जायें।''

यह भाग शक्ति-आरूढ़ सरकार के लिये निदेशनों के सम्बन्ध में है और इस अनुच्छेद में सामाजिक सहायता तथा अन्य सुविधाओं के विभिन्न पहलुओं का प्रसंग है, जो राज्य को लोगों के कल्याणार्थ प्राप्त कराने का प्रयत्न करना चाहिये। इनमें कर्माधिकार, शिक्षाधिकार तथा वृत्तिहीनता, वृद्धता, रुग्णावस्था, अयोग्यावस्था तथा अन्य ''अनर्ह अभावावस्थाओं'' में लोक साहाय्याधिकार समाविष्ट है। मेरे संशोधन के स्वीकृत होने से राज्य पर चिकित्सा सम्बन्धी सहायता का भी एक और उत्तरदायित्व हो जायेगा।

दूसरे संशोधन के विषय में मेरा निवेदन है कि यद्यपि 'अनर्ह अभावावस्था यह शब्द अन्य विधानों में प्रयुक्त हुये होंगे, किन्तु ''उचित सहायता (deseving relief)''

---

*इस संकेत का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[रायबहादुर श्यामानन्दन सहाय]

यह शब्द, जो विधानों की भाषा में कोई नये नहीं हैं; आशय को अधिक अच्छे प्रकार से व्यक्त करते हैं तथा स्वीकृत हो जाने चाहिये।

इस देश में स्वास्थ्य की स्थिति तथा मृत्यु के आंकड़े एवं वास्तविक आंकड़ों के अनुसार जीवन की अवधि को ध्यान में रख कर मेरा निवेदन है कि चिकित्सा सम्बन्धी सहायता की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

मैं ऐसा नहीं समझता कि इस संशोधन का प्रतिपादन करने के लिये अधिक युक्तियां देने की आवश्यकता है। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त तथा बरार : जनरल): मैं अपने संशोधन सं. 936 को उस रूप में पेश करता हूं जिस रूप में कि वह द्वितीय तालिका में मेरे संशोधन सं. 69 द्वारा संशोधित हुआ है। यदि दोनों को साथ लिया जाये तो मेरा आशय सुस्पष्ट हो जायेगा। मेरे संशोधन का प्रभाव यह होगा कि इस अनुच्छेद में 'लोक (public)' शब्द के स्थान पर 'राज्य' शब्द रख दिया जायेगा। मैं देखता हूं कि भोजन, वस्त्र, निवास स्थान तथा चिकित्सा सम्बन्धी सहायता उठाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य एवं अन्य एतद्सम सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। मेरे विचार से मेरे मित्र श्री श्यामानन्दन सहाय का चिकित्सक सहायता सम्बन्धी संशोधन उसमें सन्निहित है। भोजन, वस्त्र, चिकित्सा सम्बन्धी सहायता आदि के प्रावधानों को इस अनुच्छेद में विशेष रूप से समाविष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं इन संशोधनों का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुखर्जी): मैं संशोधनों पर मत लेता हूं।

संशोधन सं. 933, 934 तथा संशोधित रूप में संशोधन सं. 936 अस्वीकृत हो गये।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं अनुच्छेद 32 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है ''कि अनुच्छेद 32 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 32 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 33

***उपाध्यक्षः** अब परिषद् अनुच्छेद 33 पर पर्यालोचन आरम्भ करेगी।

***श्री वी.आई. मुनिस्वामी पिल्ले** (मद्रास : जनरल): मेरे संशोधन सं. 940 का विषय अनुसूचियों के प्रसंग में है, अतः मैं इसे पेश नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 33 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 33 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 33 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 34

***उपाध्यक्षः** अब परिषद् अनुच्छेद 34 पर पर्यालोचन आरम्भ करेगी।

(*संशोधन संख्या 938 से 947 तक पेश नहीं किए गए*)

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं विनयपूर्वक प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 34 की संख्या 34(1) कर दी जाये तथा इस प्रकार, जो खण्ड '(1) हो जाये, उसके पश्चात् निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये;

(2) राज्य स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देगा तथा घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करेगा, विशेषतः ग्राम्य क्षेत्रों में, जिससे कि यह क्षेत्र यथासम्भव स्वावलम्बी बनाये जा सकें।'

इस संशोधन को उपस्थित करने में मैं परिषद् का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूं कि ग्राम्य क्षेत्रों की अवस्था आज अतीव बुरी है। वास्तव में ग्राम्य क्षेत्र खाली हो गये हैं, और जानबूझ कर उन्हें उनकी प्राचीन मौलिकता तथा कार्य प्रेरणा से वंचित एवं विहीन कर दिया गया है। गांवों में अवस्था ऐसी खराब है कि लगभग समस्त कारीगर लोग नगरों में आ गये हैं। यहां तक कि एक नाई भी, जो अच्छी हजामत बनाना जानता हो, गांवों में नहीं ठहरता अपितु नगरों में चला जाता है जहां कि उसे अधिक धन प्राप्त हो सकता है। ग्रामवासियों की सेवा

[श्री महावीर त्यागी]

करके वह अपनी रोटी नहीं कमा सकता। यह नगर मैं जाकर सैलून खोल लेता है। ग्राम का बढ़ई भी, यदि वह अपने काम में चतुर हो, तो ऐसे ही करता है। वह नगर चला जाता है और सुगमता से पांच-छह रुपये प्रतिदिन कमा लेता है। राज भी ऐसा ही करते हैं और दर्जी भी। सारे कारीगर अपने गांवों को छोड़ कर नगरों में चले जाते हैं। मैं यह बात परिषद् के समक्ष रखना चाहता हूं कि इस अवस्था में, जबकि ग्रामीणों की स्थिति ऐसी बिगड़ गई है कि उन्हें अपने मैले कपड़े भी धुलवाने के लिये नगर ले जाने पड़ते हैं, तब ग्रामों में रहने वाली हमारी तीन चौथाई जनता का क्या हाल होगा? हमने यह उल्लेख किया है कि हम आर्थिक प्रजातंत्र चाहते हैं। ग्राम्य क्षेत्रों में विद्यमान वस्तुस्थिति में आर्थिक प्रजातंत्र कैसे स्थापित होगा?

हमने ग्रामवासियों को केवल मताधिकार दिया है। और यह भी प्रति पांच वर्ष वापस ले लेने के लिये—क्योंकि वह हमें मत देगा और तत्पश्चात् कुछ न कर सकेगा। वह केवल मत देने के अधिकार का संरक्षक है; और उसके नेता होने के कारण, उसे निर्वाचन के समय हमें वोट वापस देना होगा। हम सदा उसके नेता हैं। श्रीमान्, मुझे विधान-मंडलों का दस-बारह वर्ष का अनुभव है और मैं जानता हूं कि हम ग्रामीण लोगों के साथ न्यायोचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं। समस्त आय अधिकांश में नगरों पर व्यय कर दी जाती है। केवल नगरों में ही बिजली तथा सब प्रकार की सुविधायें है। उनकी सड़कें सीमेंट की बनी हुई हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य की व्यवस्था भी नगरों में ही है किन्तु ग्रामीणों की पूर्णत: अवहेलना की जाती है। कोई भी मनुष्य जिसमें कि तनिक भी कार्येच्छा हो, नगर आ जाता है। सब बुद्धिमान व्यक्ति नगरों में आ गये हैं और अब ग्रामों में केवल आलसी लोग शेष रह गये हैं। जो भी मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेता है वही नगर आ जाता है तथा किसी न किसी नौकरी में लग जाता है। इस प्रकार ग्राम नष्ट हो रहे हैं। श्रीमान्, यह कथन बहुत अच्छा है कि हम आर्थिक समानता तथा आर्थिक लोकतंत्र चाहते हैं, किन्तु क्या हम इस अवसर पर देश की भावी सरकारों को यह निदेशन नहीं दे सकते हैं कि यह एक मार्ग है जिससे हम आर्थिक लोकतंत्र के अपने उद्देश्य को पूरा करना चाहते हैं। मैं इस बात के विरुद्ध नहीं हूं कि बड़े उद्योग बड़े नगरों में संकेंद्रित हों। वास्तव में यह उद्योग ग्रामों के हृष्ट पुष्ट लोगों को आकर्षित करते हैं। गांव इन उद्योगों के भरती क्षेत्र हैं। ग्रामवासी इन उद्योगों में आकर नौकरी कर लेते हैं, पर इससे नगरों के कलुषित वातावरण में उनका नैतिक पतन ही होता है। यही कारण है कि अंग्रेजों ने उन्हें जानबूझ कर

सब प्रकार निर्बल तथा निर्धन रखा था। उन्हें कार्येच्छा से रहित कर दिया गया क्योंकि अन्यथा वे केवल श्रमिक बन कर काम नहीं करते। श्रीमान्, सारे ग्रामीण नगरों में नहीं आ सकते। यदि आप औद्योगिक नगरों को बढ़ायें भी जायें तो भी आप ग्राम्य क्षेत्रों में रहने वाली वृहत् जनसंख्या को नहीं खपा सकते। आप नगरों में मकानों की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे। इस संशोधन को आपके समक्ष रखने का मेरा उद्देश्य यह है कि हृष्ट पुष्ट लोगों को मशीनों के निकट जाना पड़े इसके स्थान पर मैं मशीनों को उनके निकट ले जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मशीनों को ग्रामों में पहुंचाया जाये जिससे कि ग्रामीण लोग, जो कि अपने स्वस्थ वातावरण में अपने मधुर गृहों में रहते हैं, वे अपने परिवारों से वंचित न किये जायें। श्रीमान्, इस समय भूमि पर बहुत बोझ पड़ रहा है। इस परिषद् को शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् 1891 में हमारी जनसंख्या का केवल 61 प्रतिशत भाग कृषि में संलग्न था। 1901 में यह संख्या 66 प्रतिशत थी तथा 1931 में 72 प्रतिशत थी। कृषि-भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े हो गये हैं तथा कृषि में अब कुछ भी बचत नहीं होती। यदि यही स्थिति रही तो अधिकांश ग्रामवासी नगरों में आ जायेंगे। हम यहां नगरों में अपने जीवन आनन्द से बिता रहे हैं किन्तु गांव वाले, जिनके कि नाम में हम यहां आते हैं, नागरिकता के साधारण विशेषाधिकारों से भी वंचित हैं। अतएव, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन को कृपया स्वीकार कर लिया जाये। हमारा दल, कांग्रेस दल, अपने आदिकाल से ही स्वदेशी तथा घरेलू उद्योगों का प्रसार करता रहा है, किन्तु अब जब कि अपना विधान-निर्माण करने का समय आया है, यदि हम ग्रामवासियों की उपेक्षा करेंगे तो यह ग्राम्यजनों के लिये अतीव निराशाजनक बात होगी। मैं इस परिषद् का और अधिक समय नहीं लेना चाहता क्योंकि इस माननीय महान् परिषद् के अधिकांश सदस्य मेरे संशोधन की उपयोगिता को पहले ही समझते हैं। मुझे आशा है कि माननीय सदस्य संसार के समक्ष सामाजिक क्रांति का एक नया नमूना पेश करने की सम्भावना पर विचार करेंगे। कहते हैं कि रूस में आर्थिक लोकतंत्र है, किन्तु रूस में इस आर्थिक लोकतंत्र ने समस्त शक्ति राज्य के हाथ में एकत्र कर दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि राज्य स्वेच्छाचारी हो गया है। यदि आप राजनीतिक लोकतंत्र के साथ आर्थिक लोकतंत्र भी स्थापित करना चाहते हैं तथा डा. अम्बेडकर के ''एक व्यक्ति, एक अंग'' के सिद्धान्त को जीवन में क्रियान्वित करना चाहते हैं तो आपको चाहिये कि ग्रामों को स्वावलम्बी तथा आत्मभरित बनायें। अन्यथा ग्रामों के करोड़ों बेकार लोग कभी स्वतंत्रता के फलों का आनन्द नहीं ले सकेंगे; वे आज के समान नगर निवासियों के दास ही बने रहेंगे। राजनीतिक चेतना तथा देशभक्ति तभी उत्पन्न

[श्री महावीर त्यागी]

होगी जबकि वे आर्थिक रूप में संतुष्ट होंगे। ऐसा करने का यही तरीका है कि उनके लिये घरेलू उद्योग स्थापित किये जायें जिससे कि वे अपने परिवारों के साथ अपने सुखद वातावरण में सुखी रह सकें। केवल तभी वे भावी सरकार पर कुछ प्रभाव डाल सकेंगे और देश की प्रगति में सहायता कर सकेंगे। श्रीमान्, इन्हीं शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करता हूं तथा आशा करता हूं कि परिषद् इसे स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि इस संशोधन पर श्री रामालिंगम चेटियर का एक संशोधन है। क्या आप इसे उपस्थित करना चाहते हैं?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी, किन्तु श्रीमान्, मैं चाहता हूं कि इसमें कुछ परिवर्तन कर दिया जाये, क्योंकि इस परिवर्तित संशोधन के स्वीकृत होने की अधिक सम्भावना है।

मैंने जिस संशोधन की सूचना दी थी, उसके स्थान पर मैं आपकी अनुमति से यह प्रस्ताव करता हूं कि अनुच्छेद 34 के अन्त में हम निम्नलिखित शब्द जोड़ दें:

> ''और विशेषत: राज्य ग्राम्य-क्षेत्रों में सहकारी ढंग पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।''

***उपाध्यक्ष:** क्या आप उस अनुच्छेद में कुछ जोड़ना चाहते हैं जो कि पहले ही स्वीकृत तथा पारित हो चुका है?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** इस अनुच्छेद पर इस समय विचार किया जा रहा है।

***श्री अमिय कुमार घोष** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, श्री गुप्तनाथ सिंह के नाम पर एक संशोधन है जो बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि वह संशोधन जो कि अब उपस्थित किया जाने वाला है। संशोधन संख्या 954 है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** मैं श्री त्यागी के संशोधन के स्थान पर यह रखना चाहता हूं।

***श्री अमिय कुमार घोषः** नया खण्ड 34ए जिसे उपस्थित करने का सुझाव दिया जा रहा है बिल्कुल ऐसा ही है। यह है:

''राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने और यथासम्भव उन्हें आत्मभरित बनाने का प्रयत्न करेगा।''

***एक माननीय सदस्यः** क्या दो व्यक्तियों को एक ही समय पर परिषद् में बोलने की अनुमति है?

***उपाध्यक्षः** दो व्यक्ति नहीं बोल रहे हैं। मुझे भय है आप गलती कर रहे हैं। श्री घोष को अपने स्थान पर बैठ जाना चाहिये था।

श्री चेटियर, क्या आप अपना संशोधन रख चुकें?

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियरः** श्रीमान्, यही संशोधन है।

***उपाध्यक्षः** श्री घोष, आप क्या कहना चाहते हैं? कृपया ध्वनि-यंत्र पर आ जाइये।

***श्री अमिय कुमार घोषः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह निवेदन कर रहा था कि जब इसी आशय का एक संशोधन (सं. 954) है, तो श्री महावीर त्यागी के संशोधन पर संशोधन पेश करने के स्थान पर यह अधिक अच्छा है कि हम संशोधन सं. 954 को ले लें जिसका कि वही आशय है। मैं नहीं समझता कि हम श्री महावीर त्याागी के संशोधन में यह संशोधन क्यों रखें।

अब मेरे मित्र जो संशोधन रखने वाले हैं वह इस आशय का है कि राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा, आदि। यह श्री महावीर त्यागी के संशोधन पर संशोधन के रूप में है, किन्तु मेरा निवेदन है कि श्री गुप्तनाथ सिंह के नाम में एक संशोधन पहले ही है जिसका कि वही आशय है कि राज्य घरेलू उद्योगों के विकास करने तथा उन्हें प्रोत्साहन देने और यथासम्भव ग्रामों को आत्मभरित बनाने का प्रयत्न करेगा। अतः इस संशोधन के पेश करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव हम संशोधन सं. 954 पर पर्यालोचन कर सकते हैं और यदि यह प्रस्तावक को स्वीकार्य हो तो हम इसे स्वीकार कर सकते हैं तथा खण्ड 34ए के रूप में रख सकते हैं।

***उपाध्यक्षः** श्री रामालिंगम चेटियर का संशोधन इस प्रकार है:

''और विशेषत: राज्य ग्राम्य-क्षेत्रों में सहकारी ढंग पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।''

यह भी चेटियर द्वारा रखे गये संशोधन की भाषा है। अत: यह नियमित रूप में है। अब इस अनुच्छेद पर पर्यालोचन हो सकता है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियर:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, इस देश में व्यापक इस भावना के विषय में कोई सन्देह नहीं है कि घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिये। मैं केवल यही बात कहना चाहता हूं कि अब तक घरेलू उद्योग दो कारणों से उन्नति नहीं कर पाये थे। एक तो विदेशी तथा मिल के बने हुये सामान से प्रतियोगिता के कारण और घरेलू उद्योगों के सहायतार्थ कोई संस्था न होने के कारण कच्चा माल पहुंचाना, वेतन देना और सबसे बड़ी बात विक्रय का प्रबंध करना हैं। विक्रय के सम्बन्ध में हमारे अधिकांश घरेलू उद्योगों का बहुत बुरा प्रबन्ध रहा है। इन चीजों को सम्भालने के लिये एक संस्था आवश्यक है और अब तब हम केवल दो ही उपाय ढूंढ सके हैं, या तो गुरू पूंजीपतियों का समावेश, जो कि श्रम का शोषण करते हैं, या सहकारी संस्थायें। हममें से यह किसी का उद्देश्य नहीं है कि हम इन गुरू पूंजीपतियों को प्रोत्साहन दें, जो कि ग्राम के श्रमिकों और यहां तक कि नगर के श्रमिकों का भी व्यवहारत: विदोहन करते हैं। अतएव एक ही प्रणाली हमारे पास है और वह है कच्चे माल के पहुंचाने के लिये तथा उपज के विक्रय के लिये सहकारी समितियों का निर्माण करना। श्रीमान्, इसी कारण मैंने इस संशोधन के उपस्थित करने का साहस किया है और मुझे आशा है कि परिषद् इसे एकमत से स्वीकार कर लेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, श्रीमान्, मुझे प्रसन्नता है कि राज्य के निदेशक सिद्धान्तों सम्बन्धी भाग में अनुच्छेद 34, 32 तथा 31 रखे गये हैं। यदि इन अनुच्छेदों के प्रावधानों को गम्भीरता से क्रियान्वित किया जायेगा और यदि सरकार वास्तव में सच्चाई के साथ इन अनुच्छेदों के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही करेगी, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि यह एक नया घोषणा पत्र होगा—शोषित जनों तथा उत्तराधिकारों एवं विशेषाधिकारों से वंचित लोगों के लिये नवजीवन का घोषणा पत्र होगा, और वह होगा—हमारे देश में आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की योजना का आधार तथा ढांचा। श्रीमान्, वास्तव में हमें इस देश में इसी आदर्श के लिये कार्य करना चाहिये। यह तर्क दिया जा सकता है कि यह एक अनिश्चित कल्पना

है। आर्थिक लोकतंत्र क्या है और सामाजिक लोकतंत्र क्या है? यदि मुझे ठीक स्मरण है तो जब पंडित नेहरू ने इस परिषद् में उद्देश्यों सम्बन्धी प्रस्ताव रखा था उन्होंने आशा प्रकट की थी कि ''शेष सारे विश्व के साथ-साथ हमारा देश भी समाजवाद की ओर बढ़ेगा'' यद्यपि उनके अपने मन में भी यह संशय था कि लोकतंत्र का क्या अर्थ है, राजनीतिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है अथवा आर्थिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है। किन्तु, श्रीमान्, अनुच्छेद 30 में लिखा है कि हमारे यहां सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय होगा। क्या यह कहना अधिक अच्छा नहीं रहेगा कि हमारे यहां राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र होगा, केवल न्याय ही नहीं, जो कि एक अनिश्चित कल्पना है। (*बाधायें*)

आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की यह कल्पना 1936 के पश्चात् कांग्रेस द्वारा पारित अधिकांश प्रस्तावों का आधार तथा विषय था; श्रीमान्, मैं विशेषत: कांग्रेस के मेरठ अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव की चर्चा करूंगा जिसमें आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र का आशय दिया हुआ है। डा. अम्बेडकर ने कहा था कि उनके विचार में राजनीतिक लोकतंत्र का अर्थ है ''एक व्यक्ति, एक मत''; आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है ''एक व्यक्ति, एक मूल्य''। श्रीमान्, मैं कहूंगा कि मेरे विचार में सामाजिक लोकतंत्र का अर्थ है कि 'समस्त जन, एक श्रेणी; समस्त जन, एक जाति,' और मुझे आशा है कि श्रीमान्, हम जातिरहित तथा वर्गरहित समाज के निर्माण की ओर बढ़ रहे हैं जो गांधी जी ने भारत की सामाजिक व्यवस्था के लिये सोचा था।

श्रीमान्, हमने अब राजनीतिक लोकतंत्र प्राप्त कर लिया है। केवल यहां के, या केवल यूरोप के या केवल अमेरिका के ही नहीं वरन् समस्त संसार के अनुभव से आज हम यह समझ गये हैं कि राजनीतिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं है, यदि आप इस राजनीतिक स्वतंत्रता को, इस राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक तथा सामाजिक रूप में जनसाधारण के जीवन में क्रियान्वित नहीं करेंगे, तो यह राजनीतिक लोकतंत्र कार्यशील नहीं होगा तथा राजनीतिक लोकतंत्र मृतप्राय: हो जायेगा।

इसी कारण जब लोकतंत्र का विरोध किया जाता है अथवा उसमें बाधा डाली जाती है तो इससे निरंकुश सा शासन स्थापित हो जाता है। यदि राजनीति के लोकतंत्र का ऐसा विकास तथा प्रगति होने दी जाये कि वह आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र बन जाये तो संघर्ष नहीं होगा; युद्ध नहीं होंगे, निरंकुश शासन स्थापित नहीं होगा। आज भी हम देखते हैं कि आधा संसार दास है तथा आधा स्वतंत्र। एशिया तथा

[श्री एच.वी. कामत]

अफ्रीका में भूमि में बड़े-बड़े प्रदेशों पर औपनिवेशिक शासन है। इसी कारण यह साम्यवाद का आन्दोलन बल पकड़ रहा है। आप चाहे उन्हें साम्यवादी गुण्डे कहिये चाहे साम्यवादी सह-पथिक। उनकी निन्दा करने या उन्हें गालियां देने से कोई लाभ नहीं है। यदि आप शोषण की सामाजिक व्यवस्था को अधिक स्वतंत्र व्यवस्था में परिणत नहीं करेंगे तो सामाजिक व्यवस्था को हिंसा द्वारा समाप्त करने का यह आन्दोलन चलता ही रहेगा। अत: हमें यथा समय सावधान हो जाना चाहिये तथा अपने देश में सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये। श्रीमान्, यहां अनुच्छेद 34 में एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान है। इसमें लिखा है कि: ''राज्य समुचित विधि-निर्माण अथवा आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य उपाय द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि काम, आदि प्राप्त कराने का प्रयत्न करेगा...'' मुझे प्रसन्नता है कि यह व्यवस्था की गयी है। हमारे पास तीन विकल्प हैं अथवा वे सभी है: विधि-निर्माण, संगठन अथवा अन्य कोई उपाय। श्रीमान्, मुझे आशा है कि सरकार इससे लाभ उठायेगी और एतदनुसार कार्य करेगी और ऐसी व्यवस्था करेगी कि इस अनुच्छेद के अनुसार सब श्रमिकों को—चाहे वह उद्योगों के हों अथवा अन्य—काम, जीविका के लिये उपयुक्त वेतन तथा जीवन का उचित स्तर प्राप्त हो। हम श्रमिकों का समाज चाहते हैं, प्रत्येक को श्रम करना होगा। हमें अपने लोकतंत्र के मंदिर के प्रवेश-द्वार पर अंकित कर देना चाहिये कि जो कार्य नहीं करेगा उसे भोजन नहीं मिलेगा; काम नहीं तो भोजन नहीं। श्रीमान्, यही बाइबिल में लिखा है, गीता में भी लिखा है जो बिना यज्ञ करे, बिना कार्य करे, भोजन करता है वह चोर है, ''स्तेन एवं स:''। वह समाज की चोरी करता है। अतएव हमें यह आशय रख देना चाहिये कि कार्य अनिवार्य है, कार्य आवश्यक कर्त्तव्य है। अनुच्छेद 32 में उल्लिखित है कि राज्य कार्य का अधिकार प्राप्त करायेगा; अनुच्छेद 34 और भी आगे जाता है और उसमें कहा गया है कि राज्य कार्य प्राप्त करायेगा। आज भारत में दसियों लाख व्यक्ति हैं जो कार्य करना चाहते हैं किन्तु उन्हें कार्य नहीं मिलता। जैसा कि बर्नार्ड शाह ने कहा है एक और तो हमारे यहां भूख वाले व्यक्ति हैं किन्तु भोजन नहीं है, दूसरी ओर भोजन वाले व्यक्ति हैं पर भूख नहीं है। इस सामाजिक व्यवस्था में तो आंतरिक विरोध है। जब तक यह आंतरिक विरोध चलता रहेगा तब तक संसार में शांति नहीं होगी, संसार में सुख नहीं होगा। हिंसात्मक आन्दोलन होंगे; हताश व्यक्ति मोलियां, बन्दूकें लेकर सामाजिक व्यवस्था को उलटने का प्रयत्न करेंगे। आप सारा दोष उन पर नहीं डाल सकते; आप उन्हीं का समस्त अपराध नहीं बता सकते; हम में से

उन लोगों का भी दोष है जो कि शोषण पर आश्रित सामाजिक व्यवस्था को चिरस्थायी कर देना चाहते हैं। गोलियों और बन्दूकों का उत्तर टैंक तथा बमवर्धक नहीं है, जैसा कि आज मलाया में हो रहा है, इसका इलाज है सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन। मुझे आशा है कि भावी नवभारत में जो सरकार स्थापित होने वाली है वह इन अनुच्छेदों को कार्यान्वित करेगी तथा वह सरकार आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न करेगी।

मैं केवल एक बात और कहना चाहता हूं। भारत का कार्य युगों से आध्यात्मिक लोकतंत्र की भावना के उच्च तथा महान् आदर्श को प्रसारित करना रहा है, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र इसी के फल-मात्र हैं। यदि हमारे समाज में सच्चा आध्यात्मिक लोकतंत्र जड़ पकड़ लेता है तो निःसंदेह हम मानवजाति को जीवन का एक नया पथ प्रशस्त करेंगे और चाहें संसार के सब देशों ने हिंसात्मक उपायों से, अव्यवस्था से, संघर्ष से आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयत्न किया हो, पर हम यहां से श्रीगणेश कर सकते हैं और आगे बढ़ सकते हैं तथा यह नई व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

***उपाध्यक्षः** मुझे भय है कि आप संशोधनों पर बहुत समय लगा रहे हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं अनुच्छेद पर भी बोल रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** आप अनुच्छेद को काफी समझा चुके हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैं समाप्त कर चुका है। हमें अपने देश में शांति तथा अहिंसा के तरीकों से यह नई व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये और इस प्रकार संसार को एक नया पथ दिखाना चाहिये। अन्यथा, वर्तमान व्यवस्था, जोकि विदोहन पर आश्रित है, नष्ट हो जायेगी, अपनी ही अग्नि में भस्म हो जायेगी। किन्तु मुझे आशा है कि राख में से अतीत के उस पौराणिक पक्षी फिनिक्स (Phoenix) के समान एक नई व्यवस्था उत्पन्न होगी जिसके नेत्रों में प्रभात का प्रकाश होगा।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मैं परिषद् का समय नहीं लेना चाहता, मैं केवल एक संशोधन रखना चाहता हूं। To all workers, industrial (औद्योगिक)' इन शब्दों के आगे 'agricultural (कृषक)' शब्द जोड़ दिया जाये। श्रीमान्, मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रमिक जनता में अधिकांश कृषक श्रमिक हैं।

***उपाध्यक्षः** यह अनियमित है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, क्योंकि ऐसी भावना बहुत दृष्टिगोचर होती है कि निदेशक सिद्धान्तों में घरेलू उद्योगों की चर्चा होनी चाहिये अतएव मैं इस परिषद् के सदस्यों की इच्छा पूर्ण करने के लिये अनुच्छेद 34 में कुछ शब्द रख देने के लिये सिद्धान्ततः तैयार हूं। अतएव मैं अपने मित्र श्री रामालिंगम चेटियर द्वारा प्रस्तुत संशोधन को एक-दो शब्दों के परिवर्तन के साथ स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। मैं जो परिवर्तन करना चाहता हूं उनमें से एक यह है कि Cottage Industries or इन शब्दों के आगे individual or यह शब्द रखे जायें। मैं उनके शब्द 'lines (ढंग)' के स्थान पर 'basis (आधार)' यह शब्द रखना चाहूंगा। तत्पश्चात् संशोधन इस प्रकार हो जायेगाः

> ''और विशेषतः राज्य ग्राम्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।''

मेरे विचार में इससे उन अधिकांश सदस्यों की इच्छाओं की पूर्ति हो जायेगी जो इस विषय में विशेषतः रुचि रखते हैं।

मैं यह भी कह दूं कि मैं श्री नागप्पा द्वारा प्रस्तुत संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार हूं कि 'industrial' शब्द के पश्चात् 'agricultural' शब्द जोड़ दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** इसकी अनुमति नहीं दी गई थी।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यदि आप इसकी अनुमति दें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे विचार में श्री नागप्पा के इस सुझाव में कुछ शक्ति है कि 'कृषक श्रमिक' 'औद्योगिक श्रमिक' के बराबर ही महत्त्वपूर्ण हैं अतः उसकी चर्चा 'अन्य' शब्द में ही नहीं होनी चाहिये। किन्तु यह आपके निर्णय का प्रश्न है और आपको ही इसका निश्चय करना है।

***श्री टी.ए. रामालिंगम चेटियरः** मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन को स्वीकार करता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह कह सकता हूं कि हम 'Cottage Industries' पर ही समाप्त कर दे तथा शेष शब्दों

को हटा दें। हम 'व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर' इन शब्दों को क्यों रखना चाहते हैं? इन शब्दों को रखने में कोई लाभ नहीं है, जब तक आप सहकारी आधार पर विशेष जोर देना न चाहते हों। मैं चाहता हूं कि 'व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर' यह शब्द निकाल दिये जायें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, क्या मैं स्पष्टीकरण कर सकता हूं? मैं देखता हूं कि जो सदस्य इस विषय में रुचि रखते हैं उनमें दो दल है: एक दल का विश्वास है कि घरेलू उद्योग केवल सहकारी आधार पर हों। दूसरे दल का विश्वास है कि घरेलू उद्योगों पर ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं लगना चाहिये। दोनों दलों को संतुष्ट करने के लिये मैंने यह शब्द जानबूझ कर प्रयोग किये हैं, जिनसे मुझे विश्वास है कि दो मतों के लोग संतुष्ट हो जायेंगे।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मैं बोलना नहीं चाहता।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार में हम इस विषय पर काफी पर्यालोचन कर चुके। अब हम वास्तविक मतगणना करेंगे।

***श्री महावीर त्यागी:** इस आशा से कि स्वावलम्बन के आधार पर ही चला जायेगा, मैं अपने संशोधन पर संशोधन स्वीकार करता हूं, जिस रूप में भी डा. अम्बेडकर ने अन्त में इसे पेश किया था; और इसलिये मैं अपना संशोधन वापस लेता हूं।

परिषद् की अनुमति से संशोधन (सं. 951) वापस ले लिया गया।

***श्री अमिय कुमार घोष:** श्रीमान्, मैं जानना चाहता हूं कि 'कृषक श्रमिकों' को सम्मिलित किया गया है या नहीं।

***उपाध्यक्ष:** इसे सम्मिलित नहीं किया गया है, किन्तु यदि सारी परिषद् बिना किसी मतभेद के डा. अम्बेडकर के सुझाव को मान ले तो मैं अपना निर्णय बदलने के लिये सर्वथा तैयार हूं।

***माननीय सदस्य:** हां।

***उपाध्यक्ष:** तो फिर मैं श्री रामालिंगम चेटियर के संशोधन पर डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित रूप में मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्षः** अब मैं डा. नागप्पा द्वारा संशोधित संशोधन पर मत लेता हूं।

संशोधित रूप में संशोधन स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** अब परिषद् के समक्ष यह प्रस्ताव है:

''कि पूर्वोक्त रूप में संशोधित अनुच्छेद 34 विधान का भाग होना चाहिये।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 34 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 34-ए

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 34-ए पर संशोधन सं. 952 को लेते हैं।

(*संशोधन सं. 952 पेश नहीं किया गया।*) संशोधन संख्या 953—श्री रणवीर सिंह चौधरी।

***चौधरी रणवीर सिंह** (पूर्वी पंजाब : जनरल): मैं इस पर जोर नहीं दे रहा हूं, किन्तु मैं अनुच्छेद पर बोलना चाहता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह संशोधन, संशोधित रूप में अनुच्छेद 34 में सन्निहित है। यह सब ऐसे विषय हैं जो बहुत हद तक विधान-परिषद् द्वारा विधान में रखे जाने योग्य नहीं हैं अपितु केन्द्र या प्रान्तों में कानून निर्माण के योग्य हैं। अतः मेरे विचार में इसे पेश करने की आवश्यकता नहीं है। इस समय भी प्रान्तों में अत्यधिक ब्याज लेने पर प्रतिबन्ध हैं। ब्याज के लिये प्रतिशत दर नियत है।

***उपाध्यक्षः** क्योंकि भाषा भिन्न है, अतः श्री रणवीरसिंह चौधरी को अपना संशोधन पेश करने का अधिकार है किन्तु वे ऐसा करते हैं या नहीं, यह उन पर निर्भर है। मुझे आशा है कि वे परिषद् का अत्यधिक समय नहीं लेंगे। आपको स्मरण रखना चाहिये कि हमारे अध्यक्ष की इच्छा है कि हमें अपने विधान को 9 दिसम्बर तक अन्तिम रूप दे देना चाहिये। इसे सरकाने के विषय में कुछ बात हुई थी। हमारा देश के प्रति विशेष कर्त्तव्य है। मेरे पास अनेक तार आते रहते हैं, यहां तक कि कभी-कभी मुझे अर्धरात्रि में जगा दिया जाता है और हम पर दोष डाला जाता है।

***चौधरी रणवीर सिंहः** मिस्टर वाइस प्रेसीडेण्ट, मैं इसीलिये पहले खड़ा हुआ था कि जो अपनी दो-चार बातें एक्सप्रैस करना चाहता हूं वह जनरल आर्टिकल

पर कह लेता। लेकिन चूंकि मुझे उस वक्त समय नहीं दिया गया; अगर आप इजाजत दें तो एक दो मिनट में अपनी बात कह लेना चाहता हूं। यह तो मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं अपने अमेंडमेंट को प्रेस नहीं करूंगा। इसके अलावा एक बात और भी है। जैसा कि श्री आयंगर साहब ने बताया...

***उपाध्यक्ष:** कृपया संशोधन पर बोलिये।

***श्री जैड.एच. लारी** (संयुक्तप्रांत : मुस्लिम): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यदि कोई व्यक्ति नियमित रूप से संशोधन पेश नहीं करता, तो क्या उसे परिषद् में वक्तृता देने की अनुमति है?

***उपाध्यक्ष:** आप ठीक कहते हैं। (*श्री चौधरी से*) आप सर्वप्रथम प्रस्ताव पेश करेंगे तत्पश्चात् परिषद् में वक्तृता देंगे।

***चौधरी रणवीर सिंह:** मेरा संशोधन इस प्रकार है:

"कि अनुच्छेद 34 के पश्चात् निम्नलिखित नया अनुच्छेद 34-ए जोड़ दिया जाये:

'34-ए (क) के राज्य समुचित कानून-निर्माण अथवा आर्थिक संगठन अथवा किसी अन्य प्रकार से कृषक को कृषिजन्य पदार्थों का न्यूनतम लाभप्रद मूल्य प्राप्त कराने का प्रयत्न करेगा।

(ख) राज्य उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के राष्ट्रीय सहकारी संगठन को सहायता देगा।

(ग) विशेष कानून-निर्माण द्वारा कृषि-सम्बन्धी बीमें का नियमन किया जायेगा।

(घ) किसी रूप में भी अत्यधिक ब्याज लेना वर्जित किया जाता है।' "

***उपाध्यक्ष:** क्या मैं यह समझ लूं कि आप इस संशोधन को नियमित रूप में पेश कर रहे हैं। मेरे विचार में वह पेश किया जा चुका है।

***श्री जैड.एच. लारी:** उन्होंने कहा है कि संशोधन इस प्रकार है। उन्होंने अपना संशोधन पेश नहीं किया है।

***उपाध्यक्ष:** मान लो कि आप इस बात को छोड़ देते हैं। अब श्री चौधरी आप वक्तृता दे सकते हैं?

***चौधरी रणवीर सिंह:** सभापति महोदय, जिस हालत में अब आर्टिकिल 34 स्टेंड करता है और डा. अम्बेडकर साहब ने नागप्पा जी का जो सुझाव माना है उससे भी एक क्लास और बाकी रह जाती है जिसके इकानॉमिक इंटरेस्ट्स सुरक्षित नहीं होते, और वह क्लास लैंडलार्डस का नहीं है क्योंकि उनके बारे में मैं कुछ नहीं कहना चाहता, बल्कि वह पंजाब के पीजेंट प्रोपराइटर्स का क्लास है जो कि न तो किसी को एक्प्लाइट करता है और न किसी से एक्सप्लाइट होना चाहता है। पीजेंटरी के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं कि जब तक कि हम उसकी प्रोड्यूस की कोई इकानॉमिक प्राइस मुकर्रर नहीं करेंगे तब तक उसके साथ बड़ा भारी अन्याय होता रहेगा। आज स्टेट की ड्यूटी ला एण्ड आर्डर को कायम रखना ही नहीं है, बल्कि आर्थिक उलझनों को सुलझाना भी है और यह एग्रीकल्चरिस्ट के लिये आज एक बड़ी भारी समस्या है। पिछले दिनों का जिक्र है कि गुड़ और कई चीजों की प्राइस इतनी गिरी कि जो प्राइस 4 या 5 महीने पहले थी उसकी चौथाई रह गई। यह एक कृषि प्रधान देश है और ऐसे देश में इस किस्म की उथल-पुथल एग्रीकल्चरल इकानॉमी को उथल-पुथल किये बगैर नहीं रह सकती। मैं इसको बहुत ज्यादा प्रेस नहीं करना चाहता क्योंकि मैं भी इस बात को मानता हूं कि पिछली आर्टिकिल से यह बात हल हो जाती है, पर इन चीजों का ध्यान रखना चाहिये। मेरे कहने के मानी यह है कि एग्रीकल्चर की चीजों की इकानॉमिक प्राइस मुकर्रर किये बगैर एग्रीकल्चरिस्ट की इकानॉमिक लाइफ में स्टेबिलिटी नहीं आ सकती और उसको स्टेबिल करना जरूरी है। बाकी जो तीन हिस्से हैं वह भी थोड़ा-बहुत इसी को सपोर्ट करते हैं। चूंकि हाउस के बहुत ज्यादा मेम्बर यह समझते हैं कि यह आशय इससे पहले वाले आर्टिकिल से हल हो जाता है, इसलिये मैं अपने इस अमेंडमेंट को पेश नहीं करता।

***उपाध्यक्ष:** अतएव मैं इस पर मत नहीं लूंगा। अगला संशोधन श्री गुप्तनाथ सिंह का है।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं देखता हूं कि मेरा प्रयोजन बहुत हद तक डा. अम्बेडकर के संशोधन से सिद्ध हो गया है। अत: मैं अपना संशोधन सं. 954 पेश नहीं करना चाहता।

अनुच्छेद 35

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 35 को लेते हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मुझे आपसे निवेदन करना है कि इस अनुच्छेद को अभी रहने दिया जाये।

***उपाध्यक्षः** इस अनुच्छेद को बाद में विचार करने के लिये रहने दिया जाता है, क्या परिषद् सहमत है?

***माननीय सदस्यगणः** हां।

अनुच्छेद 36

***उपाध्यक्षः** तो फिर, परिषद् के सामने यह प्रस्ताव है कि अनुच्छेद 36 विधान का भाग हो। संशोधन सं. 961 नकारात्मक प्रस्ताव है। अतएव हम संशोधन सं. 962 को लेते हैं—श्री एल.के. मैत्र।

***पं. लक्ष्मीकान्त मैत्र** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव रखता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 36 में 'प्रत्येक नागरिक नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा और' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, आपने वक्तृताओं के संक्षिप्त बनाने के विषय में जो आज्ञा दी मैं सख्ती से उसका पालन करूंगा। मैं इस संशोधन का आशय समझाने के लिये आधा दर्जन वाक्य ही बोलूंगा। यदि इस संशोधन को परिषद् ने स्वीकार कर लिया, जैसी कि मुझे आशा है वह करेगी, तो यह खण्ड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

> "राज्य इस विधान के आरम्भ से दस वर्ष की अवधि से सब बालकों और बालिकाओं को चौदह वर्ष की आयु की पूर्ति तक नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा।"

अतएव यह प्रकट हो जायेगा कि यह अनुच्छेद 36 पूर्वगत तथा आगे के अनुच्छेदों के समान हो जायेगा—कम से कम रूप में तो हो ही जायेगा। परिषद् देखेगी कि अनुच्छेद 30, 31, 32, 33, 34, 35, 37 और 38 सब ''राज्य... आदि आदि'' इन शब्दों से आरम्भ होते हैं। किन्तु केवल अनुच्छेद 36 ही ''प्रत्येक नागरिक...आदि'' इन शब्दों से आरम्भ होता है। अत: यदि हम उन शब्दों को हटा दें, जिनकी कि मैंने चर्चा की है, तो यह अनुच्छेद भी अन्य अनुच्छेदों के समान हो जायेगा। रूप के प्रश्न के अतिरिक्त इसमें आशय का भी प्रश्न है।

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

भाग 4 राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों के विषय में है और इसके प्रावधानों में उस नीति का संकेत किया गया है जिस पर देश की भावी सरकारों को चलना है। दुर्भाग्य से अनुच्छेद 36 में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त के साथ एक प्रकार का मूल अधिकार भी जोड़ दिया गया है अर्थात् ''प्रत्येक नागरिक नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा''। इसका दूसरों के साथ सामंजस्य नहीं बैठ सकता। यहां एक निदेशक सिद्धान्त को मूलाधिकार से मिला दिया गया है। अतएव मेरा निवेदन है कि मैंने जो शब्द बताये हैं वह निकाल दिये जाने चाहिये।

एक और भी बात है जिसकी ओर मैं मसौदा-समिति का ध्यान विशेषतया आकर्षित करना चाहता हूं। आप देखेंगे कि मौलिक मसौदे में इस अनुच्छेद के हाशिये में लिखा है ''नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान'' किन्तु अनुच्छेद 36 में हम प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में कोई अन्तर नहीं कर रहे हैं इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक नागरिक के लिये 14 वर्ष की आयु तक राज्य इस विधान के आरम्भ से दस वर्ष की अवधि में नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। दूसरे शब्दों में शिक्षा अवश्य ही प्राथमिक श्रेणियों तक सीमित नहीं होगी बल्कि यह माध्यमिक श्रेणियों तक भी हो सकती है, जब तक कि बालक 14 वर्ष का न हो जाये। अतएव हाशिये के शब्दों में तदनुसार संशोधन कर दिया जाये। श्रीमान्, मैं इसे उपस्थित करता हूं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर 'प्राथमिक शिक्षा' यह शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, जैसे कि पूर्व वक्ता ने स्पष्ट बता दिया है इस अनुच्छेद में प्राथमिक शिक्षा का प्रसंग है।

यह प्राथमिक शिक्षा से आरम्भ होता है तथा हाशिये के शब्दों से भी यह स्पष्ट हो जाता है। किन्तु जैसा कि अभी बताया गया है, अन्त में इसमें यह लिखा है कि राज्य विधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि में ''नि:शुल्क तथा अनिवार्य'' शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। प्रसंग तथा अन्य बातों को देखकर मुझे विश्वास है कि आशय यही है कि अनिवार्य 'प्राथमिक' शिक्षा होगी। राज्य नि:शुल्क माध्यमिक शिक्षा देने का दायित्व नहीं ले सकता।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र:** जहां तक सम्भव हो सके।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** किन्तु यदि आप सरकार के कर्त्तव्य क्षेत्र को अधिक विस्तृत कर दे तो यह प्रभावशून्य हो जायेगा। मेरे विचार में इसे प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित रखना अधिक अच्छा होगा और यही राज्य की नीति का निदेशक सिद्धान्त होना चाहिये। मेरे विचार में यही इसका अभिप्राय है। मेरा निवेदन है कि यदि यह शब्द रख दिया जायेगा तो एक स्पष्ट भुल का सुधार हो जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** अच्छा होगा यदि आप अपना दूसरा संशोधन भी पेश कर दें, क्योंकि इससे आपको दुबारा आने का कष्ट नहीं होगा।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के पश्चात् एक सैमी-कोलन (;) चिह्न रख दिया जाये।''

क्योंकि यह केवल चिह्न लगाने का प्रश्न है, अत: मैं मसौदा-समिति से इस पर विचार करने के लिये कह रहा हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद 36 पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): इन निदेशक सिद्धान्तों में कभी मुझे अनुरक्ति नहीं रही है। वे केवल पवित्र आशायें तथा पवित्र इच्छायें हैं जो इस हेतु रखी गई हैं कि जिससे समय-समय पर प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के लिये विपत्ति खड़ी की जा सके और इस परिषद् की आलोचनाओं से केन्द्रीय सरकार बहुत ही कम बार प्रभावित होगी। किन्तु अनुच्छेद 36 में प्राथमिक शिक्षा का प्रसंग है, जिसका प्रावधान मूलाधिकारों के अनुच्छेद 23 में नहीं किया गया है; उस अनुच्छेद पर अभी हमने वाद-विवाद भी नहीं किया है। मैं वक्तृताओं से अभी तक संतुष्ट नहीं हो सका हूं कि नि:शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा किस प्रकार की होगी। क्या यह एक भाषा में होगी या यदि प्रान्त में दो-तीन प्रकार के लोग हों तो क्या यह शिक्षा दो-तीन भाषाओं में होगी?

मैं उड़ीसा के विषय में कहता हूं, जहां कुछ आंध्र लोग हैं तथा कुछ बंगाली लोग हैं, जिनके लिये कि मेरे विचार में राज्य को एक विशेष श्रेणी तक नि:शुल्क

[श्री बी. दास]

प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिये। यही मांग मैं मद्रास, बंगाल तथा मध्यप्रांत से करता हूं, जहां उड़िया लोगों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जाती है। मेरे मित्र प्रधानमंत्री श्री शुक्ल मेरी ओर देख रहे हैं। यह उनके मंत्रिमंडल का दोष नहीं है। यह एक परम्परा है जो स्थापित हो गई है। कोई भी इसकी चिंता नहीं करता है कि किसी जाति को, जिसकी कि अपनी भाषा तथा लिपि है, उसी में नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा दी जाये। सन् 1881 की जनगणना में बंगाल के मिदनापुर जिले में पांच लाख उड़िया थे। पिछली जनगणना में कुछ हजार थे तथा अगली जनगणना में शायद वे सर्वथा मटियामेट हो जायेंगे। किन्तु तदपि प्राथमिक शिक्षा से व्यक्ति को अपने भगवान से प्रार्थना करने तथा अपनी धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने का अवसर मिलता है। मिदनापुर के उड़िया बच्चों को इस समय बंगाली पढ़नी पड़ती है। उन्होंने अपने नामों के स्थान पर बंगाली नाम रख लिये हैं। ऐसी ही बात मद्रास के विजगापट्टम जिले में है जहां बहुत बड़ी संख्या में उड़िया लोग रहते हैं, और यह उनका दुर्भाग्य था कि वह प्रदेश 1936 में उड़ीसा प्रान्त का भाग नहीं बन सका। पर मैं यह अवश्य चाहता हूं कि द्विभाषी प्रदेशों में जहां कि दूसरी जाति के बहुत से लोग हों प्रान्तीय मंत्रिमंडल तथा सम्बद्ध सरकार उन बालकों को अपनी भाषा में ज्ञान प्राप्त करने के अधिकार से वंचित न करे; जिससे कि जब वे पढ़-लिख जायें तो वे अपनी धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने के योग्य हो सकें। इस परिषद् की यह नीति नहीं है कि और न ही यह इस विधान का उद्देश्य है कि प्रत्येक प्रान्त को, जिस रूप में कि वह इस समय निमित है, सब लोगों को एक भाषा भाषी बना देना चाहिये। इस समस्या पर मैंने निजी रूप में बातचीत की है। मुझे ज्ञात हुआ है कि मसौदा-समिति इस पर अनुच्छेद 23(1) में विचार करेगी। यही कारण है कि मैंने अपना संशोधन सं. 970 उपस्थित नहीं किया जिसमें कि सब बालकों के लिये उनकी अपनी-अपनी मातृभाषा में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की मांग की गई थी। यह बहुत प्रमुख तथा आवश्यक समस्या है कि हमें उन लोगों का अराष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहिये जिनकी कि अपनी राष्ट्रभाषा है तथा उन्हें किसी दूसरे की राष्ट्रभाषा सीखने के लिये बाध्य नहीं करना चाहिये चाहे वह कितनी ही उपयुक्त क्यों न हो।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं मेरे मित्र श्री मैत्र का संशोधन स्वीकार करता हूं जिससे ''प्रत्येक नागरिक नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा''। इन शब्दों के निकाल देने का सुझाव दिया गया है। किन्तु मैं मेरे मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन को स्वीकार करने के लिये तैयार

नहीं हूं। वे ऐसा समझते होंगे कि अनुच्छेद 36 के शेष भाग का आशय नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा तक ही सीमित है। किन्तु ऐसा नहीं है। संशोधन के पश्चात् जिस रूप में यह खण्ड है वह यह है कि प्रत्येक बालक को उस समय तक शिक्षा संस्था में पढ़ाया जायेगा जब तक कि वह 14 वर्ष का न हो जाये। यदि मेरे माननीय मित्र मि. नजीरुद्दीन अहमद ने अनुच्छेद 18 पर ध्यान दिया होता तो वे देखते कि उस अनुच्छेद में एक प्रावधान है कि बालकों को 14 वर्ष से पहले सेवायोजित न किया जायेगा। स्पष्ट है कि यदि एक बालक को 14 वर्ष की आयु से पूर्व सेवायोजित नहीं किया जाना है तो उसे अवश्य किसी शिक्षा संस्था में कार्यलग्न रखना होगा। यही अनुच्छेद 36 का उद्देश्य है, और इसी कारण मैं कहता हूं कि इस खण्ड विशेष में 'प्राथमिक' शब्द सर्वथा अनुपयुक्त है। इसलिये मैं उनके संशोधन का विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है

''कि अनुच्छेद 36 में 'प्रत्येक नागरिक नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाने का अधिकारी होगा और' यह शब्द निकाल दिये जायें।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 36 में 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर 'प्राथमिक शिक्षा' यह शब्द रख दिये जायें।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 36 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 36 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 35

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि निम्नलिखित प्रावधान अनुच्छेद 35 में जोड़ दिया जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।''

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहब]

किसी वर्ग या सम्प्रदाय का अपने निजी कानून पर अनुसरण करने तथा उस पर दृढ़ रहने का अधिकार तो मूलाधिकारों में से है। और वास्तव में यह प्रावधान कानूनी तथा न्याय मूलाधिकारों में रखा जाना चाहिये। इसी कारण से मैंने तथा अन्य मित्रों ने कई अन्य अनुच्छेदों में, जो कि इससे पूर्व के हैं, संशोधन भेजे हैं, जिन्हें कि मैं उचित समय पर पेश करूंगा।

निजी कानूनों पर चलने वाले लोगों के लिये इन पर चलना उनके जीवन का भाग है; यह उनके धर्म का भाग है और संस्कृति का भाग है। यदि निजी कानूनों पर प्रभावकारी कोई बात की जाती है तो यह, जो लोग इन कानूनों पर युगों से तथा पीढ़ियों से चल रहे हैं, उनके जीवन की प्रणाली में हस्तक्षेप करने के बराबर है। हम जो असाम्प्रदायिक राज्य बनाना चाहते हैं उसे लोगों के धर्म या जीवन की प्रणाली में हस्तक्षेप करने का कोई काम नहीं करना चाहिये। निजी कानून को बनाये रखने का प्रश्न कोई नया नहीं है, हमें यूरोप के देशों में इसके उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ यूगोस्लाविया को लीजिये जो कि सर्ब, क्रोट तथा स्लोवन जातियों का राज्य है। वह संधि-शर्तों के अनुसार अल्पसंख्यकों के अधिकारों की प्रत्याभूति देने के लिये बाध्य है। मुसलमानों के अधिकारों के विषय में खण्ड इस प्रकार है।

सर्ब, क्रोट तथा स्लोवन राज्य मुसलमानों के लिये उनके पारिवारिक कानून तथा निजी स्थिति के सम्बन्ध में इन मामलों के नियमन के हेतु मुस्लिम परम्परा के अनुसार उपयुक्त प्रावधान करने के लिये तैयार हैं।

हम कई अन्य यूरोपीय विधानों में भी इसी प्रकार के खण्ड पाते हैं किन्तु यह सब अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में हैं, और मेरा संशोधन केवल अल्पसंख्यकों के विषय में ही नहीं है अपितु सबके सम्बन्ध में है जिनमें बहुसंख्यक जाति भी सम्मिलित है, क्योंकि इसमें ''कोई वर्ग, सम्प्रदाय या जाति'' आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं। अतएव इसका अभिप्राय सब लोगों के विद्यमान निजी कानून के विषय में उनके अधिकारों को सुरक्षित रखना है।

इसके अतिरिक्त, इस संशोधन का उद्देश्य लोगों के लिये कोई नवीनता या नये कानून स्थापित करना नहीं है, बल्कि केवल लोगों के कुछ वर्गों में इस समय विद्यमान निजी कानूनों को स्थायी रखना है। प्रश्न यह है कि लोग अनुच्छेद 35 में वर्णित एक-विध व्यवहार-संहिता क्यों चाहते हैं? स्पष्टत: उनका विचार एकरूपता

द्वारा समन्वय उत्पन्न करना हैं किन्तु मेरा कहना है कि इस काम के हेतु लोगों के निजी कानून सहित व्यवहार विषयक कानून को एक करना आवश्यक नहीं है। इससे असन्तोष होगा तथा समन्वय पर कुप्रभाव पड़ेगा। किन्तु यदि लोगों को उनके निजी कानून पर चलने दिया जाये तो कोई असंतोष नहीं होगा। प्रत्येक वर्ग के लोग अपने निजी कानून का पालन करने के लिये स्वतंत्र होंगे तो उनका वास्तव में एक दूसरे से संघर्ष नहीं होगा।

***श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है, कि इस समय जो कुछ कहा जा रहा है वह अनुच्छेद 35 का सर्वथा निराकरण है और इसे संशोधन नहीं समझा जा सकता। माननीय सदस्य केवल विरोध में बोल सकते हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** अनुच्छेद 35 इस प्रकार है:

''राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एक-विध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा।''

इसमें निजी कानून भी सम्मिलित होगा।

***उपाध्यक्ष:** मेरा निर्णय है कि माननीय सदस्य नियमानुसार हैं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहब:** अतएव, श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि देश में समन्वय उत्पन्न करने तथा बढ़ाने के लिये यह अपेक्षित नहीं है कि लोगों को उनके निजी कानून छोड़ने के लिये बाध्य किया जाये। मैं माननीय प्रस्तावक से निवेदन करता हूं कि वे इस संशोधन को स्वीकार कर लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये, अर्थात्:

'पर किसी जाति का निजी कानून, जो कानून द्वारा प्रत्याभूत हो, उस जाति की पूर्व सहमति के बिना परिवर्तित न किया जायेगा और यह सहमति उस प्रणाली द्वारा विदित की जायेगी जो कि संघीय विधान-मंडल कानून द्वारा निश्चित करे'।''

यह प्रस्ताव पेश करते हुये मैं अपनी चर्चा उन असुविधाओं तक ही सीमित नहीं रखना चाहता जो कि केवल मुसलमानों को अनुभव होंगी। मैं इसकी चर्चा अधिक विस्तृत आधार पर करूंगा। वास्तव में प्रत्येक सम्प्रदाय, प्रत्येक धार्मिक

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

सम्प्रदाय के विशेष धार्मिक कानून होते हैं, विशेष व्यवहार विषयक कानून होते हैं, जिनका धार्मिक विश्वासों तथा आचरण से अखण्ड सम्बन्ध होता है। मेरा विश्वास है कि कोई एकविध कानून बनाते समय इन धार्मिक कानूनों अथवा अर्ध-धार्मिक कानूनों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। इस संशोधन के कई कारण हैं। उनमें से एक यह है कि कदाचित यह विधान के मसौदे के अनुच्छेद 19 के प्रतिकूल है। अनुच्छेद 19 में यह व्यवस्था है कि ''लोक की व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य और इस भाग के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुये, सब व्यक्तियों को विश्वास-स्वातंत्र्य का तथा धर्म को अवाध-रूपेण मनाने तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा''। वास्तव में यह इतनी आधारभूत बात है कि मसौदा समिति ने इसे इस स्थान पर रख कर उचित कार्य किया है। तत्पश्चात् उसी अनुच्छेद के खण्ड (2) में इस अधिकार के सीमाकरण के रूप में आगे यह भी प्रावधान रखा गया है कि ''इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा, जो धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वैत्तिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो''। मैं भली प्रकार समझ सकता हूं कि धार्मिक आचरण से सम्बद्ध कई हानिकारक प्रथायें हो सकती हैं और उन पर नियंत्रण किया जा सकता है। किन्तु कुछ धार्मिक आचरण, कुछ धार्मिक कानून ऐसे हैं जो खण्ड (2) के अपवादों में, अर्थात् धार्मिक आचरण से सम्बद्ध आर्थिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं के अन्तर्गत नहीं आते। धार्मिक आचरण तथा धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति देने के पश्चात्, जो कि औचित्यपूर्ण है, मेरे विचार में अनुच्छेद 19 में जो कुछ दिया गया है, वर्तमान अनुच्छेद में उसका निराकरण कर दिया गया है। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हमें परस्पर विरोधी बातों को निकाल देने का प्रयत्न करना चाहिये। अनुच्छेद 19 में हमने एक निश्चित प्रावधान रखा है जो न्याय है तथा जिसका प्रवर्त्तन किसी भी राज्य का कोई भी नागरिक, चाहे वह किसी जाति अथवा सम्प्रदाय का हो, न्यायालय में जाकर करवा सकता है। उधर हम वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य को कुछ ढील दे रहे हैं जिससे कि वह इस प्रदत्त अधिकार की उपेक्षा कर सकता है। यह अनुच्छेद सरकार से कुछ काम करने की सिफारिश करता है और इस प्रकार उसे कुछ अधिकार देता है। पर इसके साथ-साथ इस प्रावधान में प्रजा को कोई अधिकार नहीं किया गया है। मेरा निवेदन है कि विद्यमान अनुच्छेद से राज्य को अनुच्छेद 19 में प्रदत्त प्रत्याभूतियों का उल्लंघन करने का प्रोत्साहन मिलना सम्भव है।

श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि व्यवहार विधि संहिता (सिविल प्रौसीजर कोड) में कई ऐसी बातें हैं जिनसे निजी कानूनों में हस्तक्षेप हुआ है और यह अत्यंत उचित हुआ है। किन्तु अंग्रेजों ने अपने पौने दो सौ वर्ष के राज्य काल में कुछ मूल निजी कानूनों में हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने रजिस्ट्रेशन कानून, अवधि कानून (लिमिटेशन एक्ट), व्यवहार विधि संहिता, आपराधिक विधि संहिता, दंड संहिता, साक्षी कानून, सम्पत्ति हस्तान्तरण कानून, शारदा कानून और कई अन्य कानून निर्माण किये। ज्यों-ज्यों अवसर आया, उन्हें शनैः शनैः लागू किया गया और उनका उद्देश्य कानूनों में एकरूपता उत्पन्न करना था, यद्यपि वे सम्प्रदाय विशेष के निजी कानूनों के प्रतिकूल हैं। किन्तु विवाह प्रणाली तथा उत्तराधिकार के कानूनों को लीजिये। उन्होंने इनमें कभी हस्तक्षेप नहीं किया। हमारे समाज की इस अवस्था में लोगों से यह कहना कठिन होगा कि वे अपने विवाह सम्बन्धी नियमों को छोड़ दें जो कई जातियों में धार्मिक भावनाओं से सम्बद्ध है। उत्तराधिकार के नियमों को भी धार्मिक आदेशों का ही परिणाम माना जाता है। मेरा निवेदन है कि इन मामलों में हस्तक्षेप धीरे-धीरे होना चाहिये और समय के साथ इसमें प्रगति होनी चाहिये। मुझे इसमें संदेह नहीं है कि एक समय आयेगा जब कि व्यवहार कानून एकरूप होगा। किन्तु अभी ऐसा समय नहीं आया है। हमें विश्वास है कि राज्य को व्यवहार संहिता बनाने का जो अधिकार दिया गया है, वह समय से पहले किया गया है। इस अवस्था में किसी भी राज्य को अनुच्छेद 35 के अधीन तत्काल ही विभिन्न जातियों के निश्चित कानूनों में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा। उदाहरणार्थ विभिन्न जातियों में विवाह की प्रणालियां हैं। यदि हम ऐसा कानून बनाना चाहें कि प्रत्येक विवाह को दर्ज किया जायेगा और यदि दर्ज नहीं होगा तो विवाह वैध नहीं होगा, तो हम अनुच्छेद 35 के अधीन ऐसा कर सकते हैं। किन्तु क्या आप ऐसे विवाह को, जो वर्तमान कानून और वर्तमान धार्मिक आचरण के अनुसार वैध है, केवल इसी आधार पर अवैध कर देंगे कि वह किसी नये कानून के अनुसार दर्ज नहीं हुआ है और क्या आप इस प्रकार उस विवाह से उत्पन्न बालकों को हरामी कह देंगे?

यह केवल एक उदाहरण है कि हस्तक्षेप किस सीमा तक जा सकता है। जैसा कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूं, हमारा उद्देश्य एकविध व्यवहार संहिता होना चाहिये किन्तु यह काम शनैः शनैः होना चाहिये तथा एतद् सम्बन्धी लोगों की सहमति से होना चाहिये। अतः मैंने अपने संशोधन में यह सुझाव दिया है कि किसी सम्प्रदाय विशेष के सम्बन्ध में धार्मिक कानूनों को उस सम्प्रदाय की सहमति के बिना नहीं बदलना चाहिये और यह सहमति ऐसी प्रणाली द्वारा विदित की जानी चाहिये जो कि ससंद् कानून द्वारा निश्चित करे। चाहे संसद् उस जाति की इच्छा उनके

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

प्रतिनिधियों द्वारा ही जानने का निश्चय करे। और यह प्रतिनिधि अपने निर्वाचन-भाषणों तथा प्रतिज्ञाओं द्वारा उनकी इच्छा जान सकते हैं। वास्तव में यह किसी निर्वाचन में विश्वास की कसौटी बनाई जा सकती है तथा इस पर जनता के मत को सहमति समझी जा सकती है। यह तो विस्तार की बातें है। मैंने अपने संशोधन द्वारा यह निर्णय केन्द्रीय विधान-मंडल पर छोड़ देने का प्रयत्न किया है कि यह सहमति किस प्रकार जानी जाये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यह केवल आदर्शवाद की बात नहीं है। यह एक कठोर सत्य है, जिसका सामना करने से हमें इन्कार नहीं करना चाहिये, और मेरा विश्वास है कि इससे देश के बहुत से वर्गों में अत्यधिक गलत-फहमी तथा घृणा उत्पन्न हो जायेगी। जिस कार्य को अंग्रेज पौने दो सौ वर्षों में न कर सके अथवा करने से डरते थे, जिस कार्य को मुसलमानों ने 500 वर्षों में भी नहीं किया, हमें यही काम तत्काल ही करने का अधिकार राज्य को नहीं दे देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये, वरन् सावधानी से, अनुभव से, सूझ बूझ से तथा सहानुभूति से कार्य करना चाहिये।

(मि. बी. पोकर साहब बोलने के उठे।)

***उपाध्यक्ष:** जब हम सारे खंड पर एक साथ विचार करेंगे, तब आपको अवसर मिलेगा। संशोधन सं. 960। प्रस्तावक ने इसे एक नया उप-खंड 35-ए बताया है। हम इसे बाद में ले सकते हैं अब सारे अनुच्छेद पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): मैंने अनुच्छेद 35 पर एक संशोधन की सूचना दी है। इसकी संख्या 833 है।

***उपाध्यक्ष:** यह मेरे ध्यान से चूक गया। मुझे हर्ष है कि आपने यह बता दिया।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि अनुच्छेद 35 के साथ निम्नलिखित शर्त लगा दी जाये:

> ''पर इस अनुच्छेद की किसी बात से नागरिक के निजी कानून पर प्रभाव नहीं पड़ेगा।''

अनुच्छेद 35 के विषय में मेरा विचार यह है कि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों में किसी नागरिक का पूर्णतया निजी कानून सम्मिलित नहीं है। व्यवहार-संहिता में

इस प्रकार के कानून सम्मिलित होते हैं: यथा सम्पत्ति, सम्पत्ति के हस्तांतरण के कानून, संविदे का कानून, साक्षी का कानून आदि। किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष का कानून अनुच्छेद 35 में नहीं आता। यह मेरा दृष्टिकोण है। किन्तु फिर भी इस बात को स्पष्ट करने के लिये कि अनुच्छेद 35 से नागरिकों के निजी कानून पर प्रभाव नहीं पड़ता, मैंने इस संशोधन की सूचना दी है। श्रीमान्, यदि किसी कारण से इस अनुच्छेद के बनाने वालों के मस्तिष्क में यह बात समा गई है कि 'व्यवहार संहिता' में नागरिकों का निजी कानून भी शामिल है, तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि वे एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा कर रहे हैं कि कुछ सम्प्रदायों को उनका निजी कानून बहुत प्रिय है। जहां तक मुसलमानों का संबंध है, उनके उत्तराधिकार, विवाह तथा विवाह-विच्छेद के कानून पूर्णत: उनके धर्म पर आश्रित हैं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह तो संविदे का ही प्रश्न है।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर:** मैं जानता हूं कि दूसरी जातियों के कानूनों के विषय में श्री अनन्तशयनम् आयंगर के सदा बहुत विचित्र विचार होते हैं। इसका अर्थ संविदा बताया जाता है, जब कि हिंदुओं में विवाह एक संस्कार होता है और यूरोप के लोगों में यह स्थिति का प्रश्न है। यह मुझे भली-भांति ज्ञात है। यह संविदा करना मुसलमानों के लिए कुरान के अनुसार आवश्यक हैं और यदि उसके अनुसार अमल नहीं किया जाता तो विवाह कदापि वैध विवाह नहीं होता। साढ़े तेरह सौ वर्षों से मुसलमान इस कानून पर चलते रहे हैं और सब राज्यों के समस्त अधिकारियों ने इसे मान्यता प्रदान की है। यदि आज श्री अनंतशयनम् आयंगर यह कहने लगें कि विवाह सिद्ध करने की कोई अन्य प्रणाली बनाई जानी है तो हम इसे मानने से इंकार कर देंगे क्योंकि वह हमारे धर्मानुसार नहीं हैं। यह उस संहिता के अनुसार नहीं है जो इस विषय में हमारे लिये सदा के लिये नियत की गई है। अतएव, श्रीमान्, यह मामला इतनी अगंभीरता से निपटाने का नहीं है। मैं जानता हूं कि कुछ अन्य जातियों के प्रसंग में भी, उनका निजी कानून सर्वथा उनके धार्मिक सिद्धांतों पर ही आश्रित है। यदि अन्य जातियों की अपने धार्मिक सिद्धांतों तथा आचरणों पर चलने की अपनी प्रणाली है, तो वह किसी ऐसी जाति पर नहीं थोपी जा सकती जो कि इस बात पर दृढ़ है कि वह अपने धार्मिक सिद्धांतों पर अमल करती रहे।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): सब सम्बद्ध लोगों की सहमति से ही ऐसा करने का अभिप्राय है।

***उपाध्यक्ष:** श्री भारती, बहुसंख्यक जाति सदा इतनी उदार रही है कि मैं आपसे व्यक्तिगत रूप में यह अनुग्रह करने का अनुरोध करता हूं कि आप हमारे मुसलमान भाइयों को उनके विचार प्रकट करने की यथा सम्भव पूर्ण स्वतंत्रता दें। मैं आपसे कुछ समय के लिये धैर्य रखने का अनुरोध करता हूं। मुझे ज्ञात है कि इस विषय पर उनकी भावनायें बहुत प्रबल है।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** श्रीमान्, बात यह थी कि यह कोई थोपने का प्रयत्न नहीं था। यदि कुछ भी किया जायेगा तो यह सब सम्बन्धित लोगों की सहमति से ही किया जायेगा, और माननीय सदस्य को इस बात पर इतना कहने की आवश्यकता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** यह बात ज्ञात है और मैं इसके लिये आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री महबूब अली बेग साहब बहादुर:** श्रीमान्, ऐसा प्रतीत होता है कि असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में लोगों के बहुत विचित्र विचार है। लोग ऐसा सोचते प्रतीत होते हैं कि असाम्प्रदायिक राज्य में सारे नागरिकों को समस्त विषयों में, जिनमें जीवन की दैनिक क्रिया, भाषा, संस्कृति तथा निजी कानून भी सम्मिलित हैं, एक ही कानून का अनुसरण करना चाहिये। असाम्प्रदायिक राज्य के विषय में यह ठीक दृष्टिकोण नहीं है। असाम्प्रदायिक राज्य में विभिन्न जातियों के नागरिकों को अपना धर्म पालन करने की, अपने जीवन के आचरण की स्वतंत्रता होनी चाहिये तथा उनका निजी कानून उन पर लागू किया जाना चाहिये। अतएव मुझे आशा है कि इस अनुच्छेद के निर्माताओं के मन में यह बात नहीं होगी कि 'व्यवहार संहिता' शब्द में लोगों का निजी कानून सम्मिलित है। इन शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव करता हूं कि यह बात यह शर्त लगाकर स्पष्ट कर दी जाये। जिससे कि यह अर्थ न निकाला जा सके कि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों में किसी जाति का निजी कानून सम्मिलित है।

***श्री बी. पोकर साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं मि. मोहम्मद इस्माइल साहब के प्रस्ताव का समर्थन करता हूं जिसका आशय है कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित शर्त जोड़ दी जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय अथवा जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।''

इस अनुच्छेद 35 पर यह अतीव नम्र तथा उचित संशोधन है। अब मैं परिषद् से प्रार्थना करूंगा कि इस संशोधन पर केवल मुसलमान सम्प्रदाय के ही दृष्टिकोण से नहीं, अपितु इस देश में रहने वाली विभिन्न जातियों के दृष्टिकोण से विचार करें, जो कि उत्तराधिकार, विवाह, विवाह-विच्छेद, दान तथा अन्यान्य विषयों में विभिन्न कानून-संहिताओं का पालन करती है। परिषद् को ध्यान होगा कि अंग्रेज इस देश पर विजय पाने के पश्चात् यहां गत डेढ़ सौ वर्ष से अपना शासन चलाने में जो सफल रहे, उसका एक कारण यह भी था कि उन्होंने इस देश में विभिन्न जातियों को उनके निजी कानूनों का पालन करने की प्रत्याभूति दी थी। यह सफलता का रहस्य था तथा न्याय की व्यवस्था का आधार था, जिस पर विदेशी राज्य भी आश्रित था। श्रीमान्, मैं पूछता हूं कि हमने इस देश के निमित्त जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, क्या हम उससे अपने विश्वास की स्वतंत्रता को और धार्मिक आचरण की स्वतंत्रता को तथा अपने निजी कानून के पालन की स्वतंत्रता को छोड़ देंगे और सारे देश पर व्यवहार कानून की एक संहिता लादने का प्रयत्न या आकांक्षा करेंगे, चाहे उसका कुछ भी आशय हो—और मैं कहता हूं कि उसमें विद्यमान रूप में व्यवहार कानून की सारी ही शाखायें सम्मिलित हो सकती है, अर्थात् विवाह का कानून, उत्तराधिकार का कानून, विवाह-विच्छेद का कानून और अन्य कई सम्बद्ध विषय भी सम्मिलित हो सकते हैं।

सर्वप्रथम मैं यह जानना चाहूंगा कि यह खण्ड वास्तव में किस अभिप्राय से रखा गया है। यदि 'व्यवहार संहिता' इन शब्दों को रखने का यही प्रयोजन है कि इसमें केवल व्यवहार विधि संहिता तथा अन्य ऐसे कानून शामिल होंगे जो कि वर्तमान भारत में एकरूप हैं, तो किसी को उस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु देश के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न व्यवहार न्यायालयों ने प्रत्येक जाति के लिये विवाह, उत्तराधिकार, विवाह-विच्छेद आदि के विषय में अपने निजी कानूनों पर चलने का अधिकार प्राप्त कराया है। पर यदि अभिप्राय यह है कि राज्य की आकांक्षा इन प्रावधानों का उल्लंघन करने की होनी चाहिये और सारे लोगों के लिये इन विषयों के सम्बन्ध में, जो कि विभिन्न प्रान्तों में व्यवहार न्यायालयों के कानूनों द्वारा नियमित होते हैं, एक विधि कानून लागू करने की होनी चाहिये, तो मैं केवल

[श्री बी. पोकर साहब]

यही कहता हूं कि श्रीमान्, यह एक कठोर प्रावधान है, जिसे सहन नहीं किया जाना चाहिये, और आपको यह नहीं समझना चाहिये कि मैं केवल मुसलमानों की ही भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं। इस कथन में मैं इस देश के अनेक वर्गों की भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं जो यह अनुभव करते हैं कि इस समय वे जिन धार्मिक कानूनों और धार्मिक आचरणों द्वारा शासित होते हैं, उनमें हस्तक्षेप करना वास्तव में अन्याय होगा।

श्रीमान्, आप में से अनेकों के समान मुझे बहुत सी पुस्तिकायें प्राप्त हुई हैं जिन में इन विषयों पर लोगों की भावनायें व्यक्त की गई है। मैं उन अनेक पुस्तिकाओं की चर्चा कर रहा हूं जो मुझे मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं से, हिंदुओं की संस्थाओं से प्राप्त हुई हैं, जिनमें इस प्रकार के हस्तक्षेप को अत्यन्त अन्याय बताया गया है। श्रीमान्, वे यहां तक कहते हैं कि इस परिषद् को वैधानिक दृष्टिकोण से उनके अधिकारों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार तथा प्राधिकार है। वे पूछते हैं कि इस परिषद् के सदस्य कौन होते हैं जो धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों में हस्तक्षेप करने का विचार कर रहे हैं? क्या उन्हें इस प्रश्न पर चुना गया था कि उन्हें यह अधिकार है या नहीं? क्या वे उन विभिन्न विधान-मंडलों द्वारा चुने गये हैं जिनके कि चुनाव इन प्रश्नों पर हुये थे?

यदि ऐसी परिषद् धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों में हस्तक्षेप करती है, तो यह अन्याय होगा। श्रीमान्, मैं जैसी भाषा प्रयोग कर रहा हूं इन संस्थाओं ने तो उससे भी अधिक जोरदार भाषा का प्रयोग किया है। अतएव मैं परिषद से यह प्रार्थना करूंगा कि मैं जो कुछ कह रहा हूं उसे ऐसा नहीं समझें कि वह केवल मुसलमान सम्प्रदाय के ही दृष्टिकोण से है। मुझे ज्ञात है कि हिन्दू जाति के विभिन्न वर्गों के उत्तराधिकार सम्बन्धी तथा अन्य मामलों में बहुत विभिन्नता है। क्या यह परिषद् इन सब विभिन्नताओं को मिटा कर उन्हें एकरूप करने जा रही है? मैं पूछता हूं कि एकरूपता से आपका क्या आशय है, और किस जाति के किस कानून को आप मापदण्ड मानने जा रहे हैं? इस प्रकार के खण्ड की रचना करने में आपका उद्देश्य क्या है? मिताक्षर तथा दयाभाग प्रणालियां है; अन्य कई जातियों की अनेक विभिन्न प्रणालियां हैं। आप किस को आधार बना रहे हैं? क्या हमको इस प्रकार का कुछ भी कार्य करने का अधिकार है? इस एक खण्ड द्वारा आप समस्त देश और उसकी सारी व्यवस्था में क्रांति कर रहे हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसे कि इस प्रस्ताव पर वक्तृता देते समय एक पूर्व वक्ता ने कहा था, यह मूलाधिकारों के एक प्रावधान खण्ड 19 के सर्वथा प्रतिकूल है। यदि यह प्रतिकूल है, तो इस प्रकार के खण्ड से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? क्या इस परिषद् को यह अधिकार है कि जरा सी जवान हिला कर ऐसा अनुच्छेद पारित कर दे जिससे कि सारे देश में क्रांति (परिवर्तन) हो जाये? क्या यही इसका अभिप्राय है? मैं नहीं जानता कि इस अनुच्छेद के बनाने वालों का इससे क्या आशय है। इतने गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण विषय पर, मुझे यह देख कर बहुत खेद है कि इस अनुच्छेद के बनाने वालों अथवा मसौदा तैयार करने वालों ने इस पर काफी गम्भीरता से विचार नहीं किया। यह मुझे पता नहीं है कि इसे कहीं से नकल किया गया है या नहीं। फिर भी अगर इसे कहीं से नकल किया गया है, तो मैं उस विधान में भी इस प्रावधान की निंदा करूंगा। जिन देशों में परिस्थितियां सर्वथा भिन्न हैं उनके विधानों से धाराओं की नकल करना बहुत सरल है। इतनी अनेकों जातियां हैं जो शताब्दियों से या सहस्त्रों वर्षों से विभिन्न रीतियों का पालन करती है। जरा सा लिख देने से ही आप उन सबको अवैध कर देना चाहते हैं और उन्हें एक रूप बना देना चाहते हैं। क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? इस एकरूपता से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, सिवाय इसके कि लोगों की आत्मा का हनन होगा और उनमें यह भावना उत्पन्न हो जायेगी कि उनके धार्मिक अधिकारों तथा आचरणों के विषय में उन्हें कुचला जा रहा है? हमारे विधान में ऐसी कठोर व्यवस्था नहीं रखी जानी चाहिये। श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हिन्दू जाति के कई ऐसे वर्ग हैं जो इसके विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं और जो अपनी भावनाओं को मेरे से भी अधिक जोरदार शब्दों में व्यक्त करते हैं। यदि इस अनुच्छेद के बनाने वाले कहें कि बहुसंख्यक जाति भी इसके समर्थन में एकमत है तो मैं उन्हें चुनौती देता हूं कि वे ऐसा कह दें। ऐसा नहीं है। यदि यह भी मान लिया जाये कि बहुसंख्यक जाति इस विचार की है, तो भी मैं कहता हूं कि इसकी निन्दा की जानी चाहिये, और यह होने नहीं देना चाहिये, क्योंकि जनतंत्र में, जैसा कि मैं समझता हूं बहुसंख्यकों का यह कर्त्तव्य है कि वे प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति को उनके पवित्र अधिकार प्राप्त करायें। यदि बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के अधिकारों के साथ मनमानी करते हैं तो इसे लोकतंत्र कहना गलत है। यह लोकतंत्र है ही नहीं, यह अन्याय है। श्रीमान्, मैं आपसे तथा इस परिषद के अन्य सदस्यों से निवेदन करूंगा कि इस अनुच्छेद पर बहुत गम्भीरता से ध्यान दें, यह इस प्रकार पारित करने योग्य साधारण वस्तु नहीं है।

श्रीमान्, मैं इस सम्बन्ध में निवेदन करता हूं कि मैंने मूलाधिकारों में भी एक संशोधन की सूचना दी है। यह केवल निदेशक सिद्धान्त है।

***उपाध्यक्षः** वह उचित समय पर लिया जा सकता है।

***श्री बी. पोकर साहबः** मैं केवल यही निवेदन करता हूं कि इस पर मत लेने का जो परिणाम हो, उसका प्रभाव उस संशोधन के निर्णय पर न पड़ने दिया जाना चाहिये।

***श्री हुसैन इमाम** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, भारत इतना वृहद् देश है, इसकी भारी जनसंख्या इतनी विभिन्न है कि उस पर एक प्रकार का कोई रंग चढ़ाना लगभग असम्भव हैं हमारे यहां उत्तर में अत्यधिक शीत है, दक्षिण में अत्यधिक उष्णता है। आसाम में संसार भर से अधिक वर्षा होती है। पास ही राजपूताना मरुस्थल में कोई वर्षा नहीं होती। क्या इतने बहुरंगे देश के व्यवहार-कानून में एकरूपता लाना सम्भव है? आगे चल कर हमने स्वयं ही उत्तराधिकार, विवाह, विवाह-विच्छेद तथा अन्य विषयों में केन्द्र तथा प्रान्तों को समवर्त्ती क्षेत्राधिकार दिया है। जब ग्यारह-बारह विधान-मंडल किसी विषय पर अपने लोगों की आवश्यकतानुसार तथा अपनी परिस्थितियों के अनुसार कानून बनाने के लिये तत्पर हों, तब एकरूपता स्थापित करना कैसे सम्भव है? देखिये हमने पिछड़े हुये वर्गों को कैसे संरक्षण दिये हैं उनकी सम्पत्ति का संरक्षण एक विशेष प्रणाली से किया जाता है जिससे अन्य सम्पत्ति का नहीं किया जाता। अनुसूचित क्षेत्रों में—मुझे झारखण्ड तथा सन्थाल परगनों के विषय में ज्ञान है—हमने आदिवासी जनता को विशेष संरक्षण दिया है। कुछ परिस्थितियां हैं जिनमें व्यवहार-कानून की भिन्नता होना अपेक्षित है। अतएव, श्रीमान्, मेरे पूर्व वक्ता मित्रों ने जो तर्क उपस्थित किये हैं, उनके अतिरिक्त, मेरा सुझाव है कि कई अन्य कठिनाइयां भी हैं जो सर्वथा वैधानिक हैं, जो विभिन्न जातियों के अस्तित्व पर इतनी निर्भर नहीं हैं जितनी कि भारत के लोगों की बुद्धि तथा साधनों के विभिन्न स्तरों के अस्तित्व पर निर्भर हैं। आपको एकविध विकसित देश के विषय में नियम नहीं बनाने हैं। देश के कुछ भाग अत्यन्त पिछड़े हुये हैं। आसाम के आदिवासियों को देखिये, उनकी क्या अवस्था है? क्या आप उनके लिये वैसा ही कानून बना सकते हैं जैसा कि आप बम्बई के प्रगतिशील लोगों के लिये बना सकते हैं? आपको काफी अन्तर रखना होगा। श्रीमान्, मेरे विचार में एकविध कानून बनाना सर्वथा उपयुक्त तथा अति वांछनीय है, किन्तु बहुत समय पश्चात् ही ऐसा करना चाहिये। इसके निमित्त हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये, जब कि सारा भारत शिक्षित हो जाये, जब जनसाधारण की निरक्षरता दूर हो जाये, जब लोग प्रगतिशील हो जायें, जब उनकी आर्थिक अवस्था अब से अच्छी

हो जाये, जब प्रत्येक मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होने लगे तथा अपने जीवन-संग्राम में स्वयं लड़ सके। तब आप एकविध कानून बना सकते हैं। क्या आप एक बालक तथा एक युवक के लिये एक रूप कानून बना सकते हैं?

आज भी आपराधिक कानून में आप प्रौढ़ अपराधियों को जितना दण्ड देते हैं, नवयुवक अपराधियों को उससे हल्का दण्ड देते हैं अल्पसंख्यक जाति को जो भय है, वह बहुत वास्तविक है। असाम्प्रदायिक राज्य का यह अर्थ नहीं है कि यह धर्म विरोधी राज्य हैं इसका आशय यह है कि यह अधार्मिक नहीं है, अपितु धर्महीन है। अतएव मेरा सुझाव है कि मसौदा-समिति के सदस्यों के लिये यह अच्छी नीति होगी कि वे इस प्रावधान में ऐसे संरक्षण रख दें जिससे कि लोगों का वास्तविक भय दूर हो जाये। और मुझे पूर्णाशा है कि डा. अम्बेडकर के बुद्धि चातुर्य्य से इस का कोई न कोई उपाय निकल सकेगा।

श्री के.एम. मुंशी (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं कुछ विचार उपस्थित करना चाहता हूं। इस खण्ड विशेष पर, जो कि परिषद् के सामने है, पहली ही बार विवाद नहीं हो रहा है। परिषद् में पेश होने से पहले इस पर अनेकों समितियों तथा अनेकों स्थानों पर विवाद हो चुका है। इसके विरुद्ध जो तर्क उपस्थित किये गये हैं ये यह हैं, प्रथम यह कि यह खण्ड अनुच्छेद 19 में कथित मूलाधिकार का उल्लंघन करता है और दूसरा यह है कि यह अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय है।

जहां तक कि अनुच्छेद 19 का प्रश्न है, परिषद् ने इसे स्वीकार कर लिया तथा यह सुस्पष्ट कर दिया कि: ''इस अनुच्छेद की किसी बात से किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव अथवा किसी विधि के बनाने में राज्य को अवरोध न होगा, जो (क) धार्मिक आचरण से सम्बद्ध—मैं अनावश्यक शब्दों को छोड़ रहा हूं—अथवा अन्य किसी प्रकार की ऐहिक क्रियाओं का आनियमन अथवा आयंत्रण करती हो; (ख) सामाजिक कल्याण अथवा सुधार के लिये हों''। अतएव परिषद् ने पहले ही इस सिद्धांत को मान लिया है कि यदि अब तक पालन किये जाने वाले किसी धार्मिक आचरण में लौकिक आचरण सन्निहित हो अथवा वह सामाजिक सुधार अथवा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में हो, तो इस विषय में संसद् को कानून बनाने का अधिकार होगा और इससे अल्पसंख्यकों के इस मूलाधिकार का उल्लंघन नहीं होगा।

[श्री के.एम. मुंशी]

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि यह खण्ड नहीं रखा जाये, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि भावी संसद् को व्यवहार संहिता बनाने का अधिकार नहीं होगा। इस अधिकार पर अनुच्छेद 19 का ही एक प्रतिबन्ध होगा और मैं पहले ही कह चुका हूं कि अनुच्छेद 19 में जिसे कि परिषद् ने एकमत से स्वीकार किया है, ऐहिक आचरणों के विषय में कानून बनाने का अधिकार दिया गया है। इस अनुच्छेद का समस्त आशय यह है कि यदि तथा जब भी संसद् उपयुक्त समझे या बल्कि जब भी संसद् में बहुमत उपयुक्त समझे, तब देश के निजी कानूनों को एकरूप बनाने का प्रयास हो सकता है।

एक और तर्क उपस्थित किया गया है कि एक व्यवहार संहिता का निर्माण अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय होगा। क्या यह अन्याय है? किसी भी उन्नत मुस्लिम देश में प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति के निजी कानून को इतना अटल नहीं माना गया है कि व्यवहार संहिता बनाने का निषेध हो। उदाहरणार्थ तुर्की अथवा मिस्र को लीजिये। इन देशों में किसी अल्पसंख्यक को ऐसे अधिकार नहीं दिये गये हैं। किन्तु मैं दूर नहीं जाता। जब पुराने साम्राज्य में केन्द्रीय विधान-मंडल ने शरियत-कानून पारित किया था, तब खोजा और कच्छी मैनन लोग अत्यन्त असंतुष्ट थे।

वे उस समय कुछ हिन्दू परम्पराओं का पालन करते थे, धर्म-परिवर्तन के समय से कई पीढ़ियों से वे उनका पालन करते आये थे। वे शरियत के अनुसार नहीं चलना चाहते थे; किन्तु केन्द्रीय विधान-मंडल के कुछ मुसलमान सदस्यों ने जिनकी यह भावना थी कि सारी जाति पर शरियत कानून लागू होना चाहिये, अपनी बात मनवा ली। खोजा और कच्छी मैनन लोगों को अतीव अनिच्छा से इसे मानना पड़ा। उस समय अल्पसंख्यकों के अधिकार कहां थे? जब आप किसी जाति में एकरूपता स्थापित करना चाहते हों तो आपको केवल यही विचार करना होगा कि समस्त जाति को क्या लाभ होगा और उसके एक वर्ग के रीति-रिवाजों का विचार नहीं करना होगा। अतएव यह कहना ठीक नहीं है कि ऐसा कानून बहुसंख्यकों का अन्याय है। यदि यूरोप के उन देशों की बात लें, जहां कि व्यवहार संहिता है, तो आप देखेंगे कि वहां जो कोई संसार के किसी भाग से जाता है, उसे और प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति को उस व्यवहार संहिता का पालन करना होता है। यह अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय नहीं समझा जाता है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हम अपने निजी कानून को एकरूप तथा एकविध बनाने जा रहे हैं ताकि यथासम्भव सारे देश के जीवन की प्रणाली एकविध तथा लौकिक बन जाये। हम

धर्म को निजी कानून से अलग करना चाहते हैं, उसे सामाजिक सम्बन्धों से अथवा उत्तराधिकार के विषय में पक्षकों के अधिकारों से अलग करना चाहते हैं। इन चीजों का धर्म से क्या सम्बन्ध है, यह वास्तव में मेरे समझ में नहीं आता। उदाहरण के लिये हिन्दू कानून के मसौदे को ही लीजिये जो कि विधायिनी सभा के समक्ष है यदि कोई मनु अथवा याज्ञवल्क्य अथवा अन्य शास्त्रों को देखे तो मेरे विचार में इस नये विधेयक के अधिकांश प्रावधान उनके आदेशों के विपरीत है। किन्तु आखिर हमारा समाज प्रगतिशील है। हम ऐसी अवस्था में है जबकि हमें धार्मिक आचरणों में हस्तक्षेप किये बिना राष्ट्र को प्रत्येक उपाय से एकरूप तथा एकविध बनाना चाहिये। किन्तु यदि भूतकाल में धार्मिक आचरण का ऐसा अर्थ निकाला गया है कि उसमें जीवन का सारा क्षेत्र सन्निहित हो जाता है, तो हम सभी अवस्था पर पहुंच चुके हैं कि हमें दृढ़ता से कह देना चाहिये कि यह विषय धर्म सम्बन्धी नहीं है, वे लौकिक कानूनों के ही विषय है। इस अनुच्छेद में इसी बात पर जोर दिया गया है।

अब आप देखिये कि व्यवहार-संहिता के न होने से कितनी हानियां हैं जो स्थायी रूप से रहेंगी। भारत के कुछ भागों में 'मयूख' कानून लागू हैं, अन्यत्र 'मित्ताक्षर' कानून है और बंगाल में 'दायभाग' लागू है। इस प्रकार हिन्दुओं के ही भिन्न-भिन्न कानून हैं और हमारे अधिकांश प्रान्तों तथा राज्यों में अपने लिये भिन्न-भिन्न हिन्दू कानून आरम्भ कर दिये हैं। क्या हम, इस आधार पर कि इसका देश के निजी कानून पर प्रभाव पड़ता है, यह पृथक पृथक कानून-निर्माण होने देंगे। अतएव यह केवल अल्पसंख्यकों का ही प्रश्न नहीं है, इसका बहुसंख्यकों पर भी प्रभाव पड़ता है।

मैं जानता हूं कि हिन्दुओं में भी ऐसे बहुत लोग हैं जो एकविध व्यवहार-संहिता नहीं चाहते, क्योंकि उनका भी वही दृष्टिकोण है जो पूर्व वक्ता मुस्लिम सदस्यों का है। उनकी यह भावना है कि उत्तराधिकार आदि का निजी कानून वास्तव में उनके धर्म का भाग है। यदि ऐसा है तो उदाहरणार्थ आप महिलाओं को समानता कभी प्रदान नहीं कर सकते। किन्तु आपने अभी इस आशय का मूलाधिकार पारित किया है और आपके यहां एक अनुच्छेद है जिसमें लिखा है कि लिंग के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा। हिन्दू कानून को लीजिये; आपको महिलाओं के विरुद्ध कितना ही विभेद दिखाई देगा; और यदि यह हिन्दू धर्म अथवा हिन्दू धार्मिक आचरण का भाग हो तो आप कोई भी कानून पारित नहीं कर सकते,

[श्री के.एम. मुन्शी]

जिससे स्त्रियों की अवस्था पुरुषों के समान बनाई जा सकें। अतएव कोई कारण नहीं कि सारे भारत के लिये एक व्यवहार संहिता क्यों न हो।

एक महत्त्वपूर्ण विचार है जिसे हमें मस्तिष्क में रखना चाहिये—और मैं चाहता हूं कि मेरे मुस्लिम मित्र इसे समझ लें—कि जितना जल्दी हम जीवन की इस पार्थक्य भावना को भूल जायेंगे उतना ही देश के लिये अच्छा होगा। धर्म को ऐसे क्षेत्रों में सीमित रखना चाहिये जो न्यायपूर्वक उसके क्षेत्र हैं, किन्तु शेष जीवन को इस प्रकार अनियमित, एकरूपित तथा परिवर्तित करना चाहिये कि हम यथासम्भव शीघ्र एक सबल तथा संगठित राष्ट्र का निर्माण कर सकें। हमारी प्रथम समस्या तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या इस देश में राष्ट्रीय एकता स्थापित करना है। किन्तु बहुत सी बातें हैं—और वे महत्त्वपूर्ण बातें हैं—जिनसे अब भी हमारी राष्ट्रीय एकता को गम्भीर खतरा है। और यह बहुत जरुरी है कि हमारा सारा जीवन—जहां तक कि वह लौकिक क्षेत्रों से सम्बद्ध है—ऐसे तरीके से एकविध बनाया जाना चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र ही हम यह कहने योग्य हो जायें कि ''हम अपने आपको एक राष्ट्र कहते हैं इसीलिये एक राष्ट्र नहीं है, अपितु हम वास्तव में भी एक ही राष्ट्र हैं, अपने रहने के तरीके से, अपने निजी कानून से, हम एक प्रबल तथा संगठित राष्ट्र हैं। केवल इसी दृष्टिकोण से, मेरा निवेदन है कि—यदि मैं ऐसा कह दूं तो—विरोधी दल को उचित परामर्श नहीं मिला है। मुझे आशा है कि हमारे मित्र यह नहीं समझेंगे कि यह अल्पसख्यकों के साथ अन्याय करने का प्रयत्न है। यह बहुसंख्यकों के लिये कहीं अधिक कठोर है।

अंग्रेजी राज्य में हमारे मस्तिष्क में यह भाव था कि निजी कानून धर्म का भाग है, यह भावना अंग्रेजों तथा उनके न्यायालयों ने उकसाई थी। अतएव हमें इसे त्याग कर आगे बढ़ जाना चाहिये मैं अन्तिम वक्ता माननीय सदस्य को फरिश्ता की एक घटना याद दिला दूं जो मुझे याद आ गई है। अलाउद्दीन खिलजी ने बहुत से परिवर्तन किये थे जो शरियत के विरुद्ध थे, यद्यपि वे पहले शासक थे जिन्होंने यहां मुस्लिम सल्तनत स्थापित की थी। दिल्ली के काजी ने उनके कुछ सुधारों पर आपत्ति की, तब उन्होंने उत्तर दिया कि ''मैं अज्ञानी मनुष्य हूं और मैं इस देश पर इसके सर्वोच्च हितों के अनुसार राज्य कर रहा हूं। मैं अपनी अज्ञानता को भी जानता हूं और अपनी सद्भावनाओं को भी, जब परमात्मा यह देखेंगे कि मैंने शरियत के अनुसार कार्य नहीं किया, तो वे मुझे क्षमा करेंगे।'' जब अलाउद्दीन इस सिद्धान्त को न मान सका तो एक आधुनिक सरकार कैसे

मान सकती है कि धार्मिक अधिकारों में निजी कानून अथवा अन्य कई विषय सम्मिलित हैं, जिन्हें दुर्भाग्य से अपने धर्म का अंग मानने की हमें शिक्षा दी गई है। यही मेरा निवेदन है।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मित्र माननीय श्री मुंशी द्वारा अति पूर्ण व्याख्या के पश्चात् सब बातों की पुनरावृत्ति करना अपेक्षित है। किन्तु यह समझ लेना अच्छा होगा कि आया इस अनुच्छेद के वर्त्तमान रूप में इस पर कोई वास्तविक आपत्ति हो सकती है।

''राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एकविध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा।''

जैसा कि बताया गया है व्यवहार संहिता में व्यवहार सम्बन्धों के प्रत्येक विषय आ जाते हैं। संविदे का कानून, सम्पत्ति का कानून, उत्तराधिकार का कानून, विवाह का कानून तथा एतद्सम अन्य विषय इसमें सम्मिलित हैं। यहां इस प्रकार के व्यापक वक्तव्य पर क्या आपत्ति हो सकती है कि राज्य भारत के साद्यन्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एकविध व्यवहार-संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा?

दूसरी आपत्ति यह थी कि धर्म संकट में है और यदि एकविध व्यवहार संहिता हो जायेगी तो जातियां स्नेहभाव से नहीं रह सकेगी। वास्तव में इस अनुच्छेद का उद्देश्य स्नेहभाव ही है। आशय यह है कि उत्तराधिकार तथा अन्य विषयों में विभिन्नता भी ऐसी एक चीज है जो भारत की विभिन्न जातियों में अन्तर उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। इसका उद्देश्य यही है कि इन विषयों पर समझौते का कोई सामान्य उपाय निकाला जाये। यह बात नहीं है एक न्याय प्रणाली दूसरी पर प्रभाव नहीं डालती अथवा उससे प्रभावित नहीं होती। कई मामलों में हिन्दू संहिता के प्रस्तावकों ने केवल हिन्दू कानून से ही सब बातें नहीं ली है किन्तु अन्य प्रणालियों से भी ली है। इसी प्रकार उत्तराधिकार कानून रोमन तथा अंग्रेजी दोनों प्रणालियों पर आश्रित है। अतएव कोई प्रणाली तब तक आत्मभरित नहीं हो सकती, जब तक कि इसमें विकास का तत्त्व नहीं होगा। हमारे पूर्वजों ने एकविध राष्ट्र को लोकतंत्र के एक धागे में बांधने की कल्पना नहीं की थी। सदा अतीत से चिपटे रहने से कोई लाभ नहीं है। हम एक महत्त्वपूर्ण बात में अतीत से विदा ले रहे हैं, वह यह है कि हम सारे भारत को एक ही राष्ट्र के रूप में बनाना

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

तथा संगठित करना चाहते हैं। क्या हम उन बातों में सहायता दे रहे हैं जो एक राष्ट्र के संगठन में सहायक होती हैं। अथवा क्या इस देश को सदा प्रतिद्वन्द्वी जातियों का स्थान बनाये रखना है। यही प्रश्न विचारणीय है।

मेरे मित्र मि. पोकर ने मसौदा-समिति पर दोष लगाया था कि वे अपना काम नहीं जानते थे। मैं पूछना चहता हूं कि आपने ध्यान से पढ़ा है कि ब्रिटिश राज्य में क्या हुआ? आपको ज्ञात होना चाहिये कि मुस्लिम कानून में संविदा, आपराधिक कानून, विवाह-विच्छेद कानून, विवाह कानून सब आ जाते हैं और मुस्लिम धर्मशास्त्र में वर्णित कानून के सब अंग आ जाते हैं। जब अंग्रेजों ने इस देश पर अधिकार किया तो उन्होंने कहा: ''हम इस देश में एक ही आपराधिक कानून बनाने जा रहे हैं जो सारे नागरिकों पर लागू होगा। क्या मुसलमानों ने आपत्ति की और क्या एक आपराधिक कानून बना देने पर मुसलमानों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया? इसी प्रकार हमारे यहां संविदे का कानून है जो मुसलमानों एवं हिन्दुओं और मुस्लिमों एवं मुस्लिमों के बीच के व्यवहारों पर लागू है। वे कुरान के कानून द्वारा शासित नहीं होते, वरन् आंग्ल-भारतीय न्यायशास्त्र द्वारा शासित होते हैं, किन्तु इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई। इसके अतिरिक्त हस्तांतरण के कानून में अनेक सिद्धांत हैं जो अंग्रेजी न्यायशास्त्र से लिये गये हैं।

अतएव, जब दो सभ्यताओं अथवा दो संस्कृतियों में सम्पर्क होता है तो यह आवश्यक है कि एक संस्कृति दूसरी संस्कृति द्वारा प्रभावित हो तथा उस पर प्रभाव डाले। यदि दृढ़ विरोध हो, अथवा जनता के किसी वर्ग की ओर से प्रबल विरोध हो, तो इस देश के कानून निर्माताओं के लिये उसकी अवहेलना करने का प्रयत्न करना बुद्धिमानी नहीं होगी। आज अनुच्छेद 35 की अनुपस्थिति में भी भारत की भावी संसद् के लिये ऐसे कानून बनाने का कोई निषेध नहीं है। अतएव, अभिप्राय एकविध व्यवहार-संहिता बनाने का है। यूरोप के विभिन्न देशों में मुसलमान हैं, हिन्दू हैं, कैथोलिक हैं, ईसाई हैं, यहूदी हैं। मैं मि. पोकर से जानना चाहता हूं कि क्या फ्रांस में, जर्मनी में, इटली में और यूरोप के सारे देशों में विभिन्न निजी कानून स्थायी रूप से लागू हैं? क्या विभिन्न राज्यों में उत्तराधिकार के कानूनों को अनियमित तथा एकविध नहीं किया गया है? उन्होंने तो मुस्लिम न्याय शास्त्र का सविस्तार अध्ययन किया होगा और पता लगाया होगा कि इन देशों में न्याय की एक ही प्रणाली है या विभिन्न प्रणालियां हैं।

वहां के लोगों को भी छोड़ो। आज यदि देश के अन्य भागों के लोगों के पास यूरोप महाद्वीप में सम्पत्ति हो जहां जर्मन व्यवहार संहिता अथवा फ्रांसीसी व्यवहार संहिता लागू हो तो उन लोगों पर कई विषयों में उस स्थान का कानून लागू होता है। अतएव यह कहना गलत है कि हम धर्म के क्षेत्र में हस्तक्षेप कर रहे हैं। मुस्लिम-कानून के अन्तर्गत विवाह एक व्यवहार संविदा है, जैसा कि हिन्दू कानून में नहीं है। मुस्लिम न्याय शास्त्र के अनुसार विवाह की कल्पना में पवित्रता का आशय नहीं आता, यद्यपि इस संविदा के प्रसंग में कुरान तथा बाद के न्यायशास्त्रियों के कथन लागू होते हैं। अतएव धर्म के जोखिम में होने का कोई प्रश्न नहीं है। निस्संदेह कोई संसद्, कोई विधान-मंडल ऐसा बुद्धिहीन नहीं होगा कि वह ऐसा करने का प्रयत्न करे, लोगों के धार्मिक सिद्धान्तों में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में विधान-मंडल की अधिकार की बात अलग है। इस देश में समय के अनुसार अपने आप को ढालने के लिये केवल एक ही जाति तैयार दिखाई देती है; और यह बहुसंख्यक जाति है। वे अल्पसंख्यक जाति से शिक्षा लेने और अपने हिन्दू कानूनों का पुनर्निर्माण करने के लिये तैयार हैं। और हिन्दू कानून में भी सुधार करने के लिये वह मुसलमानों की बातें अपनाने के लिये तैयार हैं। अतएव अनुच्छेद 35 पर जो आपत्ति की गई है उसमें कोई बल नहीं है। भावी विधान-मंडल एकविध व्यवहार संहिता बनाने का प्रयास कर सकता है और वह चाहे तो न करे। एकविध व्यवहार संहिता में व्यवहार कानून के सब अंग सम्मिलित है। संविदों, कार्य-प्रणाली तथा सम्पत्ति को समवर्ती सूची में रख कर इन विषयों में एकरूपता लाने का प्रयत्न किया गया है। इन विषयों के सम्बन्ध में अंग्रेजी न्याय-शास्त्र का सब से बड़ा अंशदान यही रहा है कि इन विषयों में एकरूपता स्थापित की गई है। हम अंग्रेजों से, जिन्होंने कि इस देश पर शासन किया है, केवल एक ही कदम आगे बढ़ रहे हैं। हमें विदेशी सरकार से अत्यधिक राष्ट्रीय देशी सरकार का अविश्वास क्यों करना चाहिये? हमारे मुसलमान मित्रों को जनतंत्रात्मक शासन से अधिक विश्वास अंग्रेजी शासन में क्यों होना चाहिये? प्रजातंत्रात्मक शासन सब लोगों के धार्मिक सिद्धान्तों तथा विश्वासों का निस्संदेह आदर करेगा।

अतएव, इन्हीं कारणों से मैं निवेदन करता हूं कि परिषद् इस अनुच्छेद को, जो कि पर्याप्त सोच-विचार के पश्चात् सदस्यों के समक्ष रखा गया है, एकमत से पारित कर दें।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, इस अनुच्छेद पर जो संशोधन पेश किये गये हैं, मुझे भय है कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। इस मामले

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

पर बोलते समय, मेरा विचार इस प्रश्न के विषय में कुछ कहने का नहीं है कि इस देश में एक व्यवहार संहिता होनी चाहिये या नहीं। मेरे विचार में इस विषय पर मेरे मित्र श्री मुंशी तथा श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने इस अवसर के योग्य काफी कह दिया है। यह सम्भव है कि जब कुछ मूलाधिकारों पर संशोधन पेश हों, तब मेरे लिये इस विषय पर पूरा वक्तव्य देना सम्भव हो, अत: मैं इस विषय पर इस समय नहीं बोलना चाहता।

मेरे मित्र मि. हुसैन इमाम ने संशोधनों का समर्थन करते समय पूछा था कि क्या इतने वृहद् देश के लिये कानूनों की एकविध संहिता बनाना सम्भव तथा वांछनीय है? मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझे उस बात पर बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि हमारे यहां इस देश में मानवीय सम्बन्धों के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में कानूनों की एकविध संहिता है। हमारे यहां दंड-विधान में एकविध तथा सम्पूर्ण आपराधिक कानून निहित है जो सारे देश में लागू हैं और एक आपराधिक विधि संहिता भी है। हमारे यहां सम्पत्ति हस्तांतरण का कानून है जो सम्पत्ति के सम्बन्धों के विषय में है तथा सारे देश में लागू है। इसके अतिरिक्त हुण्डी पुर्जों के कानून (नेगोशियेबल इन्स्ट्रूमेण्ट्स एक्ट) हैं। और मैं असंख्य उदाहरण दे सकता हूं जिनसे यह सिद्ध हो जायेगा कि इस देश में लगभग एक ही व्यवहार संहिता है, जो एकविध है तथा समस्त देश में लागू है। अब तक केवल एक प्रदेश में व्यवहार कानून हस्तक्षेप नहीं कर सका है, वह विवाह तथा उत्तराधिकार का प्रदेश है। यही एक छोटा सा कोना है जिसमें हम अब तक हस्तक्षेप नहीं कर सके हैं और जो लोग अनुच्छेद 35 को विधान का भाग बनाना चाहते हैं उनकी इच्छा यही सुधार करने की है। अतएव यह जो तर्क पेश किया गया है कि हमें ऐसा करना चाहिये या नहीं, वह मुझे अनुपयुक्त दिखाई देता है क्योंकि हमने वास्तव में उन सब विषयों पर कानून बना दिये हैं जो कि इस देश में एकविध व्यवहार संहिता में निहित होते हैं। अतएव अब यह पूछने का समय बीत चुका कि क्या हम ऐसा कर सकते हैं? मेरा कहना है कि हम ऐसा पहले ही कर चुके हैं।

संशोधन के विषय में मैं केवल दो ही बातें कहना चाहता हूं। मुझे पहली बात यह कहनी है कि जिन सदस्यों ने यह संशोधन रखे हैं वे कहते हैं कि मुसलमानों का निजी कानून, जहां तक इस देश का सम्बन्ध है, सारे भारत में अटल तथा एकविध था। मैं इस कथन को चुनौती देना चाहता हूं। मेरे विचार में मेरे अधिकांश मित्र, जो कि इस संशोधन पर बोले हैं, यह सर्वथा भूल गये कि

सन् 1935 तक पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत में शरियत कानून लागू नहीं था। उत्तराधिकार तथा अन्य विषयों में वहां हिन्दू कानून का अनुसरण किया जाता था, यहां तक कि 1939 में केन्द्रीय विधान-मंडल को इस विषय में हस्तक्षेप करना पड़ा तथा पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के मुसलमानों पर हिंदू कानून का लागू होना बंद करवा कर वहां शरियत कानून लागू कराना पड़ा। केवल इतना ही नहीं। मेरे माननीय मित्र भूल गये कि 1937 तक पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के अतिरिक्त शेष भारत के भी विभिन्न भागों मे, यथा संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत तथा बम्बई में उत्तराधिकार के विषय में काफी हद तक मुसलमानों पर हिन्दू कानून लागू था। उन्हें दूसरे मुसलमानों के साथ जो कि शरियत पर चलते थे, एक स्तर पर लाने के लिये 1937 में विधान-मंडल को हस्तक्षेप करना पड़ा तथा शेष भारत पर शरियत कानून लागू करने के लिये एक कानून बनाना पड़ा।

मेरे मित्र श्री करुणाकर मैनन ने मुझे बताया है कि उत्तरी मालाबार में मरुमकतायम कानून केवल हिंदुओं पर ही नहीं मुसलमानों पर भी लागू था। स्मरण रखना चाहिये कि मरुमकतायम कानून मातृ-प्रधान कानून है पितृ-प्रधान कानून नहीं।

अतएव उत्तरी मालाबार में मुसलमान अब तक मरुमकतायम कानून का अनुसरण करते थे। अतएव ऐसा कहने से कोई लाभ नहीं है कि मुस्लिम कानून एक अटल कानून है जिसका वे प्राचीन समयों से अनुसरण करते रहे हैं वह कानून उस रूप में कुछ भागों में लागू नहीं था और दस वर्ष पहले लागू किया गया था। अतएव यदि वह आवश्यक जान पड़े कि समस्त नागरिकों पर उनके धर्म का विचार न करते हुए एक ही व्यवहार संहिता लागू करने के लिये अनुच्छेद 35 में निर्देशित नयी व्यवहार संहिता में हिंदू कानून के कुछ अंश रख दिये गये हैं—इसलिये नहीं कि वे हिंदू कानून के अंश हैं किन्तु इसलिए कि वे सर्वाधिक उपयुक्त जान पड़ते हैं—तो मुझे विश्वास है कि किसी मुसलमान को यह कहने का अधिकार नहीं होगा कि व्यवहार संहिता के बनाने वालों ने मुस्लिम जाति की भावनाओं के प्रति कठोरता बरती है।

मेरी दूसरी बात यह है कि मैं उन्हें आश्वासन देना चाहता हूं। इस विषय पर उनकी भावनाओं को मैं पूर्णत: समझता हूं, किन्तु मेरे विचार में उन्होंने अनुच्छेद 35 का बहुत खींचतान कर आशय निकाला है। इस अनुच्छेद में केवल यही सुझाव है कि राज्य देश के नागरिकों के लिये एक व्यवहार संहिता के निर्माण का प्रयत्न करेगा। यह ऐसे नहीं कहता कि संहिता के निर्माण के पश्चात् राज्य उसे सब नागरिकों पर केवल इसी आधार पर लागू कर देगा कि वे नागरिक हैं यह सर्वथा

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संभव है कि भावी संसद् आरंभ करने के निमित्त ऐसा प्रावधान बना दे जिससे कि यहां मेरे मित्रों ने जो आशंका प्रकट की है, वह सर्वथा मिथ्या हो जाये। अतएव मेरा निवेदन है कि इन संशोधनों में कोई सार नहीं है, और इस कारण मैं उनका विरोध करता हूं।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है।

"कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित प्रावधान जोड़ दिया जाये:

''पर किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति का यदि कोई निजी कानून हो तो उसे वह कानून छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 35 में निम्नलिखित प्रावधान जोड़ दिया जाये, अर्थात्:

'पर किसी जाति का निजी कानून, जो कानून द्वारा प्रत्याभूत हो, उस जाति की पूर्व सहमति के बिना परिवर्तित नहीं किया जायेगा और यह सहमति उस प्रणाली द्वारा विदित की जायेगी जो कि संघीय व्यवस्थापक मंडल कानून द्वारा निश्चित करे।' ''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि विधान के मसौदे के भाग चार को निकाल दिया जाये।"

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 35 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 35 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 37

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 37 में 'अनुसूचित जातियां' इन शब्दों के स्थान पर 'किसी भी वर्ग अथवा धर्म की पिछड़ी हुई जातियां' यह शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, विधान के मसौदे के अनुच्छेद 303 (ब) में 'अनुसूचित जातियों' की यह परिभाषा है कि भारत-शासन (अनुसूचित जाति) आदेश, 1936 में उल्लिखित जातियां तथा प्रजातियां अनुसूचित जातियां हैं। उस आदेश में अधिकांश वन जातियां, जातियां तथा उप-जातियां उल्लिखित है और उनमें बावरिया, चमार, चूड़ा, बाल्मीकि औद, सांसी, सिखी बन्द और रामदासी शामिल हैं। यह मानना होगा कि उनके भिन्न-भिन्न मत तथा विश्वास है। उदाहरण के लिये सिख, रामदासी, औद, बाल्मिकी तथा चमार काफी संख्या में हैं। वे उतने ही पिछड़े हुये हैं जितने कि अन्य धर्मों के मानने वाले उनके भाई हैं। किन्तु अब तक यह पिछड़ी हुई सिख जातियां उन लाभों से वंचित रखी गई जो कि अनुसूचित जातियों के लिये रखे गये। इसका परिणाम यह हुआ है कि या तो अधिक संख्या में धर्म परिवर्तन हुए हैं अथवा असंतोष रहा है।

मैं समझता हूं कि जहां तक विधान-मंडल के निर्वाचनों का प्रश्न है इसमें कुछ औचित्य हो सकता है, क्योंकि सिखों के लिये पृथक् प्रतिनिधित्व है और अनुसूचित जातियों को सामान्य जगहों में से आरक्षण मिल जाता है। सरदार गोपालसिंह खालसा का मामला प्रसिद्ध है। उन्हें एक जगह के लिये खड़ा नहीं होने दिया गया था, जब तक कि वे यह घोषणा न कर देते कि वे सिख नहीं है। ऐसे मामलों से निराशा तथा असंतोष उत्पन्न हुआ था, क्योंकि सामान्यत: यह विश्वास जम गया था कि कुछ वर्गों के विरुद्ध विभेद किया जा रहा है।

मूल आशय यह है कि जाति के पिछड़े हुए वर्गों को उन्नत कराया जाये जिससे कि वे राष्ट्रीय कामों में समान भाग ले सकें। मेरे समक्ष यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि अनुच्छेद के प्रथम भाग में तो 'जनता के दुर्बल वर्गों के शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों' के प्रोत्साहन की व्यवस्था की गई है। यह सर्वथा उपयुक्त है तथा प्रत्येक वर्ग पर लागू हो सकता है। किंतु क्योंकि 'दुर्बल वर्गों' की कहीं व्याख्या नहीं की गई है, अत: यह आशंका है कि 'अनुसूचित जातियों सम्बन्धी उत्तरार्ध भाग पर ही सारा ध्यान लगा दिया जायेगा, तथा दुर्बल वर्गों का कुछ भी अर्थ नहीं रहेगा। यहां तक कि इस अनुच्छेद में भी उत्तर भाग पर ही सारा बल दिया गया है और 'अनुसूचित जातियों' के साथ 'विशेषतया' शब्द लगा कर उधर ही ध्यान केन्द्रित कर दिया गया है।

इस विषय में मेरी बात का गलत अभिप्राय नहीं समझा जाना चाहिये। मुझे इस बात से कोई स्पर्धा नहीं है कि राज्य 'अनुसूचित जातियों' के प्रति इतना विशेष ध्यान क्यों देता है। इसके प्रतिकूल मैं इस बात का समर्थन करता हूं कि पिछड़ी

[सरदार हुकुम सिंह]

हुई जातियों को और भी रियायतें दी जायें और उनके प्रति और भी अधिक ध्यान दिया जाये। मेरा उद्देश्य केवल यही है कि विभेद नहीं होना चाहिये। अनुच्छेद का भी यह आशय नहीं है। किन्तु जैसे कि मैं कह चुका हूं, अब तक 'अनुसूचित जातियों' का अर्थ जन सामान्य ने यही समझा है कि उनमें उन्हीं जातियों के सिख धर्म के अनुयायी सदस्य सम्मिलित नहीं हैं। हमें विशेषतया यह प्रत्याभूति देनी चाहिये कि विधान को वस्तुतः कार्यान्वित करने वाले लोग गलत आशय न निकाल सकें तथा विभेद न कर सकें। वर्तमान अनुच्छेद के अंतर्गत शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों को ही प्रोत्साहन दिया जाना है, अतएव यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि यह सर्व पिछड़ी हुई जातियों के लिये किया जाना है और किसी विशेष धर्म या विश्वास के अनुयायियों के ही लिये नहीं किया जाना है मैं यह प्रस्ताव परिषद् की स्वीकृति के लिये सविनय पेश करता हूं।

***श्री ए.वी. ठक्कर** [संयुक्त राज्य काठियावाड़ (सौराष्ट्र)]: श्रीमान्, मैं यह संशोधन (983) पेश करता हूं जिसमें कहा गया है कि हिन्दू तथा मुसलमानों की पिछड़ी हुई जातियों को भी शामिल...

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या मैं जरा कुछ कह दूं? मेरा विश्वास है कि यह दोनों संशोधन, जो पिछड़ी हुई जातियों आदि के सम्बन्ध में हैं, अनुसूची में रखना अधिक उपयुक्त होगा और हम जब अनुसूची पर विचार करें तब इन पर विचार करना अच्छा रहेगा। मैं यह सुझाव रखता हूं कि इन संशोधनों पर विचार स्थगित कर दिया जाये।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** मेरे संशोधन में तो कुछ सिद्धांतों के रख देने का आशय है...

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर इन सब पर अनुसूची में यथा संभव पूर्ण विचार करने के लिये हम तैयार हैं।

***श्री ए.वी. ठक्कर:** क्या वे सब पिछड़ी हुई जातियों को सम्मिलित करने के लिये तैयार हैं?

***उपाध्यक्ष:** इस समय किसी बात के लिये सहमत होना उनके लिये कठिन है। इस विषय पर बाद में वाद-विवाद हो सकेगा।

***श्री ए.वी. ठक्करः** तब मैं इस समय अपना संशोधन पेश नहीं करता।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं अपना संशोधन संख्या 985 पेश नहीं कर रहा हूं। इसका आशय केवल यह है कि Scheduled Castes में capital letter (बड़े अक्षर) लिखे जायें। मैं विनयपूर्वक मसौदा-समिति के अध्यक्ष का ध्यान अनुच्छेद 303 (1) के (w) और (x) पदों की ओर आकृष्ट करता हूं। वहां हमने दो परिभाषायें रखी हैं (Scheduled Castes) 'अनुसूचित जातियां' तथा (scheduled tribes) 'अनुसूचित बन जातिया'। प्रत्येक स्थान पर Scheduled Castes में capital letters (बड़े अक्षरों) का प्रयोग हुआ है, किंतु (scheduled tribes) में छोटे अक्षरों का।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हम उस पर विचार करेंगे।

***सरदार हुकुम सिंहः** मैं अपना संशोधन वापिस लेने की अनुमति चाहता हूं।

प्रस्ताव परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।

***उपाध्यक्षः** अब मैं अनुच्छेद 37 पर परिषद् का मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 37 विधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 37 विधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 38

***उपाध्यक्षः** अब परिषद् अनुच्छेद 38 पर विचार आरंभ करेगी।

***श्री महावीर त्यागीः** श्रीमान्, अपने संशोधन सं. 999 के सम्बन्ध में मैंने अपने कतिपय मित्रों से परामर्श करने के पश्चात् एक अन्य संशोधन की सूचना दी है (द्वितीय सूची में सं. 71)। मुझे आशा है कि मि. अज़ीज अहमद खां, जिनका इस अनुच्छेद पर अपना एक संशोधन है, मेरे संशोधन से सहमत होंगे। इस संशोधन को पेश करते हुए मैं कोई वक्तृता देना नहीं चाहता। नशाबन्दी के

[श्री महावीर त्यागी]

मूल्य को सब समझते हैं। अतएव मैं केवल अपना संशोधन, जो द्वितीय सूची में सं. 71 है, पेश करता हूं:

''कि अनुच्छेद 38 के अन्त में 'और (राज्य) स्वास्थ्य के लिये हानिकर नशीले पेयों तथा औषधियों के उपभोग के निषेध करने का प्रयत्न करेगा' यह शब्द जोड़ दिये जायें।''

श्रीमान्, मुझे ज्ञान है कि मेरे इस प्रयत्न के लिये मुझ पर उन लोगों की ओर से गालियां पड़ेगी जिन्हें कि पीना बन्द करना होगा। मुझे यह भी पता है कि इस बुराई के दूर हो जाने से जिन गृहणियों को लाभ होगा वे मुझे आशीर्वाद देंगी। इस संशोधन के स्वीकृत हो जाने पर देश के लिये मुझे केवल शुभकामना करनी चाहिये।

***एम माननीय सदस्य:** एक बज चुका है।

***उपाध्यक्ष:** किसी का दोष अवश्य है। यहां इस घड़ी में अभी एक बजने में एक मिनट है।

परिषद् कल प्रात:काल के 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

तत्पश्चात् परिषद् बुधवार, 24 नवम्बर, 1948 को प्रात:काल के 10 बजे तक के लिये स्थगित हो गई।